एक ज़िन्दगी बनजारा

शैल रस्तोगी



कल्पना प्रकाशन
मेरठ

मूल्य :
१२ रुपये

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १९७४

प्रकाशक :
कल्पना प्रकाशन
७, कबाड़ी बाजार, मेरठ कैण्ट—२५०००१

आवरण-सज्जा :
अशोक आर्ट्स
३००/ए, चाणक्यपुरी, मेरठ

मुद्रक :
उर्वशी प्रेस
वैद्यवाड़ा, मेरठ

EK ZINDAGI BANJARA (EKANKI)
BY DR. (SMT.) SHAIL RASTOGI

शशि भाभी के
लिए
जो अब नहीं
रहीं

क्रम

	कुछ कहना है, इसीलिए	१
१.	एक ज़िन्दगी बनजारा	१५
२.	अँधेरा…अँधेरा…और अँधेरा	२९
३.	एक समुन्दर गहरा सा	४१
४.	पर्वत से गिरा एक मन	५७
५.	तूफ़ान और शहनाइयाँ	६९
६.	सूली पर चढ़ा एक और मसीहा	८३
७.	अलविदा, मेरे दोस्तों !	९७
८.	ओ रे ओ सहयात्री !	११३
९.	…और एक नया सूरज	

कुछ कहना है, इसलिए

रचनाओं का भी अपना-अपना भा[illegible]हीं अन्दाज मुझे 'एक ज़िन्दगी बनजारा' के प्रकाशन से हो रहा है।

न जाने कितने वर्षों की साध थी कि मेरा कोई काव्य-संकलन प्रकाशित हो। 'पराग' का प्रकाशन सन् १९४७ ई० में हुआ था। तब से अब तक न जाने कितनी बार नयी काव्य-पुस्तिकाओं के प्रकाशन की बात मेरे सामने आयी और टूट गयी। कोई सिलसिला जमता दिखायी नहीं देता था। अब भी 'पारमिता' (काव्य-संकलन) के प्रकाशन की ही बात थी और प्रकाशित हो गया एकांकी संकलन। है न भाग्य की ही बात!

आज का युग एकांकी का युग है—अनेकांकी का नहीं। बड़े रंगमंचीय नाटकों के प्रस्तुतीकरण की सुविधाएँ हमारे छोटे-छोटे विद्यालीय रंगमंच नहीं दे पाते, फिर समय का अभाव। ऐसी स्थिति में ३०–३५ मिनट में समाप्त होनेवाले एकांकी अनायास ही हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। 'एक ज़िन्दगी बनजारा' की रचना का कारण भी बहुत कुछ यही रहा है।

बहुत दिनों तक कॉलिज की एकांकी नाटक-प्रतियोगिता की संयोजिका के पद पर कार्य करते हुए मुझे बार-बार लगता रहा कि हिन्दी में एकांकियों की कमी है। कुछ अच्छे एकांकी हैं अवश्य, पर उनमें काट-छाँट की बहुत अपेक्षा होती है।

'एक ज़िन्दगी बनजारा' में मेरे समय-समय पर लिखे गये नौ एकांकी संगृहीत हैं। ये सभी एकांकी मूलतः पारिवारिक हैं। यथास्थान राजनीति, मनोविज्ञान, समाज आदि का संस्पर्श इनमें है, पर इनका मूलाधार परिवार ही है। परिवार के सुख-दुःख, सम्पन्नता-दरिद्रता, भाव-अभाव सभी कुछ इन एकांकियों में समाविष्ट है। आज का युग विषमताओं का युग है। बढ़ती हुई मँहगाई ने समाज की अर्थ-व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर डाला है। असन्तोष से घुटा-घुटा माहौल, संत्रास से सहमा-सहमा परिवेश, लगता है एक गहरा धुँधलका, कभी न छँटने वाला कुहासा जन-जीवन पर छाता चला जा रहा है। कभी आन्दोलन तो कभी विस्फोट, कभी सड़कों पर चप्पलें घिसती बेकार पीढ़ी तो कभी पुरानी पीढ़ी के टूटते तार-तार होते सपने। असलियत तो आज यह है कि यह स्थिति हमारे देश में ही नहीं है, सारा संसार ही विषमताओं के कगार पर खड़ा है। आज जो कुछ हो रहा है, उससे कट-कर जीवन नहीं चल सकता। जीवन की सारी विसंगतियों से आज का साहित्य भरा हुआ है। यह तो होना ही है, क्योंकि साहित्य तो जीवन के साथ-साथ चलता है।

ये सभी एकांकी रंगमंच पर आसानी से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। 'एक ज़िन्दगी बनजारा', 'पर्वत से गिरा एक मन', 'एक समुन्दर गहरा सा' आदि एकांकियों का मंचन सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

मेरे एकांकियों के सभी पात्र व्यक्ति पात्र हैं—जाति पात्र नहीं। 'एक समुन्दर गहरा सा' की रचना पर मेरे कुछ साथी लोगों ने देवता-पात्र होने का दोषारोपण किया है, रचना मानव पात्र है—वस्तु-स्थिति की जटिलताओं से पलायन करनेवाला—एक साधारण पात्र। इन एकांकियों के अधिकांश पात्रों को मैंने अपने जीवन में देखा है, अपने जीवन के अनेक क्षणों में जिया है। मैंने उन्हें कहीं भी काल्पनिक-अवास्तविक आवरणों से ढकने का प्रयास नहीं किया। ये पात्र न तो समझ में न आनेवाले घोर बुद्धि-जीवी पात्र हैं, और न हवा के झोंकों से उड़ जानेवाले हल्के-फुलके पात्र। इनका अपना अस्तित्व है—अपना व्यक्तित्व है।

कहीं कुछ भी यदि साहित्य के महायज्ञ में एक आहुति-मात्र मेरे ये एकांकी बन पाये, तो मुझे प्रसन्नता होगी।

शैल रस्तोगी

१ सितम्बर, १९७४

१

एक ज़िन्दगी बनजारा

(युद्ध के बाद बंगला जन-जीवन पर आधारित)

पात्र

माँ — कविता की सास

कविता — बहू

कुमार } दो घनिष्ठ मित्र
शेखर }

गरिमा } कविता की बेटियाँ (आयु ५ वर्ष)
नीलिमा } (आयु ३ वर्ष)

[ढाका के एक साधारण परिवार का मकान। समय प्रातःकाल ८–९ के लगभग।

बंगला देश की आजादी के बाद धीरे-धीरे सभी शरणार्थी अपने-अपने घरों को लौट आये है। जन-जीवन सामान्य हो चला है।

एक कमरा है। कमरे के दायी ओर एक चारपाई बिछी है, जिस पर कुछ कपड़े पड़े हैं। बायी ओर एक ट्रंक ज़मीन पर रखा हुआ है। ट्रंक पर एक पुस्तक है। ट्रंक के पास एक मेज़ है, उस पर कुछ प्याले-प्लेट रखे हैं। साथ ही एक डलिया में कुछ फूल भी हैं। सामने एक खिड़की है जो बाहर को खुलती है। मेज़ के पीछे दीवार पर एक बड़ा-सा फ़ोटो टँगा हुआ है। कमरे के बायीं ओर अलगनी पर हैंगर में एक कोट टँगा है व कुछ साड़ियाँ। कमरे के दोनों ओर दो दरवाज़े हैं। दायाँ घर से बाहर जाने के लिए और बायाँ घर के अन्दर की ओर ले जाने के लिए है।

पात्रों की वेशभूषा बंगालियों जैसी है।

पर्दा खुलता है। कमरा खाली है। माँ का प्रवेश। वह कमरे में फैले सामान को धीरे-धीरे सहेजती है और फिर खाट पर बैठ जाती है। फिर उठकर ट्रंक पर रखी कोई किताब उठाती है। एक क्षण फ़ोटो की ओर देखती है, फिर लौटकर चारपाई पर बैठ जाती है।

गरिमा और नीलिमा का प्रवेश। दोनों के बस्ते कमर के पीछे लटके हुए हैं। पहले दोनों बच्चियाँ फ़ोटो के पास खड़ी होती है, शीश झुकाती हैं, फिर माँ के पाँव छूती हैं।]

मां : (दोनों के शीश पर हाथ फेरती है) जा रही हो दोनों स्कूल ?

दोनों बच्चियां : हां, दादी मां ।

मां : गरिमा ! नीलू को सँभालकर ले जाना । बड़ा ट्रैफिक रहता है रास्ते में ।

गरिमा : अच्छा, दादी मां ।

दोनों बच्चों का दाएँ द्वार से प्रस्थान । बाएं द्वार से कविता का प्रवेश । उसके माथे पर बड़ी-सी बिन्दी है, मांग में सिन्दूर । वह चौड़े किनारे की तांत की साड़ी पहने है । पहले वह डलिया से फूलों की माला निकालकर फ़ोटो को पहनाती है, प्रणाम करती है, फिर मां के चरण छूती है ।

मां : जा रही है, बेटी ?

कविता : हां, मां ! आज मैं जरा देर से लौटूंगी ।

मां : अच्छा, बेटी ! (लम्बी सांस लेती है)

कविता का बाएँ द्वार से प्रस्थान । मां कुछ देर चुप बैठी रहती है, फिर धीरे-धीरे लेट जाती है । पृष्ठ-भूमि से एक दर्द-भरा संगीत उभरता है :

बनजारा जिन्दगी
उजड़ा हुआ चमन
ये उजड़ा बाग़बां
कोई भी नहीं है
हम पर मेहरबां
सोये सभी उदास,
पीड़ा जगी जगी
बनजारा जिन्दगी

धीरे-धीरे स्वर क्षीण होता जाता है । मां उठती है, खिड़की से बाहर झांकती है और चुपचाप देखती रहती है उदास-उदास । कुमार का बाएँ द्वार से प्रवेश ।

कुमार : (मां के पास जाकर) क्या देख रही हो मां ?

मां : कुछ नहीं, बेटा ! बेचारी अभागी लड़की कितना दर्द-भरा गीत गाती है ।

कुमार : यह तो जमीला चोधरी है, मां ! यूनिवर्सिटी में हमारे साथ पढ़ती थी । बेचारी लड़की ! कुंवारी ही गर्भवती, पागल हो गई है । कभी गाती है, कभी हँसती है और कभी रोती है ।

थक जाती है तो "नहीं ! नहीं ! नहीं !" कहकर चिल्ला उठती है।

माँ : इसके परिवार का कोई भी नहीं बचा क्या, बेटा ?

कुमार : सब कुछ मिट गया, माँ ! कुछ नहीं बचा।

माँ : (उदास होकर बिस्तर पर आकर बैठ जाती है) बेचारी लड़की…… !

कुमार : क्या सोच रही हो, माँ ?

माँ : कुछ भी तो नहीं, बेटे !

कुमार : तुम बहकाने की कोशिश मत करो, माँ ! तुम अब भी उदास हो। अतीत अब भी तुम्हारी आँखों के आँसुओं में लहराता रहता है। भूल जाओ, माँ ! सब कुछ भूल जाओ।

माँ : अतीत को भूल जाऊँ ? बहुत चाहती हूँ बेटे ! पर…… पर इतनी सारी तस्वीरें हैं कि उभरती ही चली आती है एक के बाद एक मेरी आँखों के सामने।

कुमार : पुरानी तस्वीरें मिटा डालो, माँ ! नई तस्वीरें बनाओ। तभी तो जी सकोगी, नहीं तो……नहीं तो।

हाँफ जाता है।

माँ : ठीक कहते हो, बेटा ! कोई भी तो घर ऐसा नहीं बचा जहाँ मनहूसियत का साया न पड़ा हो। पड़ोस के सेठ की लड़की जुलेखा, याद है न तुझे, कल ही तो धान के खेत में उसकी लाश सड़ती हुई मिली।

कुमार : सब देख रहा हूँ, माँ ! सब सुन रहा हूँ। तानाशाहों ने हमें हर तरह से बरबाद कर डाला। जालिम लुटेरे कहीं के ! अस्मत लूटी, जानें लूटीं, दौलत लूटी, कुछ भी तो नहीं छोड़ा। उफ़ ! ये दर्दनाक कहानियाँ इतिहास के पृष्ठों से कभी नहीं मिटेंगी माँ ! (कुछ रुककर) कविता और बच्चे गये माँ ! मुझे भी जाना है।

माँ : हाँ जाओ, बेटा।

कुमार : अगर तुम्हारा मन न लगे तो पड़ोस के गांगुली दा के यहाँ हो आना माँ !

कुमार का प्रस्थान।

माँ : पड़ोस के गांगुली दा के यहाँ हो आऊँ ! पड़ोस……जहाँ खण्डहरों की आत्माओं का चीत्कार ही सुनाई देता है केवल। गांगुली की जवान बहू आज तक लापता है। एक भी तो घर पहले जैसा नहीं रहा। (कुछ रुकती है, बैठ जाती है, फिर

खड़ी हो जाती है) सामने वाले वे प्रोफेसर भट्टाचार्य, उन्हें भी मार डाला क़ातिलों ने और उनके वे फूल-से सुकुमार दोनों बच्चे, उफ़! अनाथाश्रम में पल रहे हैं। उनकी माँ का तब से ही पता नहीं। (हाँफ जाती है) और······और······ 'सोनार बांगला' दैनिक के सम्पादक गोसाईं, उनकी बेटी गिरिबाला······सब कहाँ गये, कहाँ गये भगवान्? किसको भूलूं, किसको याद करूँ? (रोती है) और अपना दर्द भी सबको देखकर भूली रहती हूँ। क्या करूँ कभी-कभी······ (कलेजे को थामकर बैठ जाती है। तभी बाहर से जमीला चौधरी के हँसने की आवाज उभरती है। माँ फिर खिड़की के पास जाती है और कलेजे पर हाथ रखकर फिर बैठ जाती है) हाय बेचारी लड़की!

दर्द-भरा गीत धीरे-धीरे उभरकर दूर डूबता चला जाता है।

उजड़ा हुआ चमन
ये उजड़ा बाग़बाँ
सोए सभी उदास
पीड़ा जगी-जगी···

तभी शेखर का प्रवेश

शेखर : माँ! माँ!

माँ : (एकदम चौंककर) कौन? कौन? अरे शेखर! अरे-अरे तू लौट आया बेटे! (दौड़ती है। शेखर को हृदय से लगाती है, हाँफती है) तू आ गया बेटे! (उसे चारों ओर से टटोलती है) हाय मैं तो तुझे······समझती थी। मरें तेरे दुश्मन······।

शेखर : हाँ, माँ! मैं तो मर ही चुका था, पर मुक्तिवाहिनी के सैनिकों ने मुझे बचा लिया। हम लोग तो साथ-साथ ही घर से निकले थे।

माँ : हाँ पाकिस्तानी गुण्डे तुम्हें हम सबके बीच में से खींच ले गये थे। कविता भी तो तुम्हारे ही कपड़े पहनकर निकली थी। वह कुछ पीछे रह गई तो बच गई वरना······हाँ वे गुण्डे देखते-ही-देखते सबके सब तुम पर पिल पड़े थे एक साथ। भला हो कुमार का। सबकी आँखों में धूल झोंककर वह हमें बाहर निकाल लाया था।

शेखर : कुमार जिन्दा है माँ? वही तो मेरा एक दोस्त था।

माँ : हाँ, कुमार जिन्दा है बेटे ! बाद में पीछे आनेवाले शरणार्थियों ने तुम्हारे बारे में यह दुःखद समाचार दिया कि तुम······

शेखर : मर गये······(हँसता है) मौत भी कभी-कभी कितनी करारी हार खाती है माँ ! देखा तुमने मेरे साथ में तो यही हुआ। मार तो डाला ही था क़ातिलों ने, कसर भी क्या रह गयी थी ? क्या सोचने लगीं माँ ? और सब कहाँ हैं ?

माँ : कुछ नहीं सोचती बेटे ! तू नहा तो सही। सभी आते हैं, खबर भेजती हूँ। सब ठीक हैं। कुछ जलपान तो कर ले।

शेखर अन्दर की ओर जाता है।

माँ : हाय भगवान् ! अब क्या होगा ? जिस कहानी को ख़त्म हुआ समझ लिया था, वही टूटी कहानी फिर से शुरू हो रही है। अब क्या करूँ भगवान् ? क्या होगा ? नहीं-नहीं उसका कुछ दोष नहीं। वह तो मना करती थी, पर······ पर······मेरे सामने कोई और रास्ता भी तो नहीं था। कुमार······कितना टूटा-टूटा-सा लगता था। माँ-बाप, भाई-बहिन सब छिन गये। कोई भी तो उसका नहीं बचा। बेचारा अकेला कुमार······(हाँफती है) मैंने ही उसकी दशा पर तरस खाकर······फिर हम सब कहाँ जाते······ कहाँ जाते ?

आवाज़ अन्तर्मन की : तू हत्यारी है। तूने अपने हाथों अपने बेटे की बगिया उजाड़ डाली।

माँ : नहीं······नहीं······मेरा कोई क़सूर नहीं है, मैं बेक़सूर हूँ······

आवाज़ : बेक़सूर नहीं है तू ! पापिनी है। अपने बेटे की दुश्मन है तू। तू अपने बेटे से प्यार नहीं करती थी। तू माँ नहीं है, माँ नहीं है।

माँ : नहीं, नहीं, ऐसा न कहो। मैंने कोई क़सूर नहीं किया। मैं कुछ नहीं जानती······ ।

आवाज़ : तू कुछ नहीं जानती ? तू सब कुछ जानती है। सब कुछ जानती थी। पापिन हत्यारी कहीं की !

माँ : नहीं, नहीं, नहीं (चीखकर बेहोश हो जाती है। **कुमार और शेखर दोनों का एक साथ दौड़ते हुए प्रवेश, पर एक-दूसरे को देखकर चौंक उठते हैं।**

शेखर : अरे कुमार ! तुम यहाँ हो। माँ कह रही थीं कि तुमने मेरे

परिवार······ ।

कुमार : अरे शेखर ! तुम आ गये । तुम···तुम··· तुम्हें तो (दोनों एक-दूसरे से लिपट जाते हैं) ।

शेखर : हाँ कुमार ! माँ भी यही कहती थी । मुझे पाकिस्तानियों ने मार तो डाला ही था । मारने में कसर भी क्या छोड़ी थी । वो तो मुक्तिवाहिनी के सैनिकों का भला हो । मुझे मरा जानकर पाकिस्तानी गुण्डे छोड़ गये थे । मेरे शरीर में कुछ हरकत देखकर मुझे मेरे देश के सिपाही उठा ले गये और तभी से मैं अस्पताल में था । अभी एक सप्ताह पहले ही तो चलने लायक हुआ । असली बात तो यह है—जाको राखे साइयाँ······

कुमार : (हकलाते हुए) हाँ, हाँ, ठीक कहते हो । अच्छा शेखर, तुम जरा डाक्टर चौधरी से दवा ले आओ माँ की । माँ का यह दवा का पर्चा है, मैं माँ को सँभालता हूँ ।

शेखर का प्रस्थान ।

कुमार : (लड़खड़ाता है) हाय, यह क्या हो गया मेरे भगवान् ? मैं क़सूरवार नहीं हूँ मेरे दोस्त ! मैंने कभी तुम्हारा बुरा नहीं चाहा था । मुझे माफ़ करो । मैंने कोई पाप नहीं किया । केवल दुःख-दुःखों को बाँट लें, यही सोचकर मैं दुःखी हताश हो दुःखों की छाया में आया था । पर······पर······सुख कितना छलिया निकला । (सिर पकड़कर बैठ जाता है, फिर उठता है । ट्रंक के पास जाता है, ट्रंक में से एक चित्र निकालता है) यह तस्वीर सच्ची नहीं है, सच्ची नहीं है । इसके टुकड़े-टुकड़े करके हवा में इसकी चिन्दियाँ उड़ा देनी चाहियें । (चित्र को ध्यान से देखता है) इस तस्वीर का हर रंग झूठा है—झूठा है । हाय भगवान् कितने नकली रंगों से तुमने मेरी ज़िन्दगी की तस्वीर बनायी थी । सारे रंग फीके ही रहे ।

तस्वीर को फाड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है । तभी माँ होश में आ जाती है, और कुमार से फ़ोटो लेकर खाट पर फेंक देती है ।

माँ : क्या करता है रे पागल ? क्या तस्वीरें अपने हाथों यों मिटाई जाती है ? (कुमार का हाथ पकड़ती है) चल तो जरा मेरे साथ । बाहर तक जाना है, एक जरूरी काम है । (दोनों का प्रस्थान)

कुछ देर स्टेज खाली रहता है। एक क्षण के बाद कविता का प्रवेश।)

कविता : (दोनों हाथों से मुंह ढांपकर फूट-फूट कर रोती है) अब क्या होगा प्रभो ! मैं विवश थी (आंखें पोंछती है)।

अन्दर से आती आवाज : ऐसी भी क्या विवशता थी। लाचारी की आड़ लेकर तूने अपनी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाही थी।

कविता : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं था, मैं किसी से प्यार नहीं करती थी। मेरी कोई भी इच्छा बाक़ी नहीं थी।

आवाज : तू झूठ बोलती है। एक साल भी तू चुपचाप बैठी नहीं रह सकी। तूने अपने पति की दुनिया में आग······।

कविता : नहीं, नहीं, नहीं······मुझे अपने पति से अत्यधिक प्यार था। मैं उनकी दुनिया में आग लगाना नहीं चाहती थी, पर शरणार्थी कैम्प में फैलती अपयश की वे चिंगारियाँ—आग बरसाती अफवाहें—"कुमार-कविता साथ-साथ रहते हैं। कुमार कविता के बच्चों को अपने बच्चे समझता है। माँ को अपनी माँ और कविता को अपनी······।

उभरती हुई मिली-जुली हँसी के स्वर।

कविता : (चीखकर) नहीं-नहीं, मैं यह सब कुछ नहीं चाहती थी। तब माँ का आदेश हम दोनों ने जबर्दस्ती स्वीकार कर ही लिया। अब क्या होगा ? वे क्या सोचेंगे, दुनिया क्या कहेगी ? मुझे मर जाना ही चाहिये। (चारपाई के पास आती है, चारपाई से फ़ोटो उठाकर देखती है, फिर चारपाई पर फेंक देती है) ये तस्वीर, मिटा दे कविता ! (कुछ सोचती है) अब तो हर तस्वीर मिट गई। कोई-सी भी तस्वीर सच्ची नहीं रही। झूठी दुनिया की झूठी तस्वीरें मिटा दो भगवान् ! मिटा दो ! (रोती है और मुंह ढककर अन्दर चली जाती है)।

शेखर का प्रवेश।

शेखर : जब से घर में आया हूँ सब सहमे-सहमे-से लगते हैं—आतंकित हैं सब जैसे मेरे आने से ! (सोचता है) माँ को मेरे आने की इतनी खुशी क्यों नहीं हुई जितनी होनी चाहिये थी ? और कुमार······कितना उखड़ा-उखड़ा-सा लग रहा था। डॉ० चौधरी के पास गया तो उन्होंने भी कहा—"बड़ा अफ़सोस है आपने आने में देर कर दी, शेखर !" मैंने आने में देर कर दी ? क्या हुआ घर तो अपना ही है, देर से

पायी चाहे अंधेर में । कमरे में आठ-दस मोम लगे, सभी उजड़े-उजड़े से । चारों ओर आँखें फैलाकर देखता है) वही घर है, वही मेरा फ़ोटो । तब मेरे फ़ोटो पर कविता फूल नहीं चढ़ाती थी, अब फूल चढ़ाये गये हैं । वही ट्रंक है, वे ही मेज़-कुर्सियाँ और पास के वे ही प्याले । सब कुछ वही, कुछ भी तो नहीं बदला । (माँ के बिस्तर पर जाकर) वही माँ का कम्बल । (खूँटी पर टँगी कविता की साड़ियाँ देख कर) यही कविता की साड़ियाँ, जो मैंने खरीदी थीं । सब कुछ तो वही है, फिर क्या बदला है ? (थोड़ा रुककर) बदले हैं घर के लोग । माँ बदल गयी, कविता भी बदल गयी होगी ? कुमार बदल गया । (माँ की चारपाई के पास आता है । बिस्तर पर पड़े फ़ोटो को उठाकर) किसके ब्याह का है यह फ़ोटो ? यह……यह तो कुमार है । वाह दोस्त, ब्याह कर लिया और बताया भी नहीं ? दुल्हन तो बड़ी सुन्दर है । अरे……अरे बिल्कुल कविता जैसी । कविता……कविता भी ब्याह के समय ऐसी ही दीखती थी (हँसता है) ।

(फिर ज़ोर से चीखता है) माँ ! तुम सब कहाँ हो ? इतने दिन बाद आने पर मेरा ऐसा स्वागत ? मुझे तुम लोगों से इसकी आशा नहीं थी ।

कुमार, कविता, माँ सब दौड़कर आते हैं ।

शेखर : कुमार! यह क्या है ? ब्याह किया और मुझे निमन्त्रण भी नहीं ।

कुमार : ब्याह ?

सब आँखों से आँसू पोंछते हैं ।

शेखर : यह सब क्या रहस्य-लीला हो रही है माँ ! मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा ।

माँ : सब समझ जाओगे बेटे ! तुमने बड़ी देर कर दी । तुम्हारे आने की कोई उम्मीद नहीं थी । उधर कुमार बिल्कुल अकेला रह गया था । परिवार की परवरिश की जलती हुई समस्या मेरे सामने थी ।

शेखर : पहेलियाँ न बुझाओ माँ ! साफ़-साफ़ कहो, मैं समझ नहीं पा रहा ।

माँ : सब समझ जाओगे बेटा ! मुझे कहने दो । मेरी इच्छा को पूरी करने के लिए कुमार ने कविता की माँग में सिंदूर भरा है—ये दोनों निर्दोष हैं ।

शेखर : तो यह बात है । कविता और कुमार दोनों अब पति-पत्नी हैं । समझ गया, सब समझ गया । तभी सब लोग सहमे-सहमे-से, उखड़े-उखड़े-से थे ।

कविता सिसकती है, माँ सिसकती है, कुमार आंसू पोंछता है ।

शेखर : तो हम चल दिये दोस्त ! कोई बात नहीं, जैसे आये थे, वैसे ही चल दिये…… । अब हमारी ज़रूरत भी कहाँ रह गई ?

कुमार : नहीं शेखर ! तुम नहीं जाओगे । ज़िन्दगी के त्रिकोण से किसी एक को हटना है तो मुझे हटना है । तुम क्यों हटोगे ? घर तुम्हारा है, माँ तुम्हारी है, बच्चे तुम्हारे हैं और कविता, वह तो तुम्हारी थी ही, और अब भी तुम्हारी ही है । उसका कोई दोष नहीं, उसे माफ़ कर देना शेखर !

शेखर : नहीं कुमार ! तुम नहीं जाओगे, मुझे जाना है ।

कुमार : नहीं शेखर ! तुम रोकना भी चाहोगे तो जानेवाला नहीं रुक सकेगा । एक उजड़ा हुआ वीरान थी मेरी ज़िन्दगी और मैंने उसे बसाने की भूल कर दी थी । भूल का पता चल चुका है मेरे दोस्त ! अब आगे और भूलों की गुंजाइश नहीं है मेरी ज़िन्दगी में……अलविदा ।

शेखर : नहीं कुमार ! तुम्हें मैं नहीं जाने दूंगा ।

कुमार : नहीं शेखर ! बंग माँ की हरी-भरी धरती मुझे अपनी सेवा के लिए पुकार रही है । मुझे अपने देश का सेनानी होकर जाना ही पड़ेगा । मुझे आज्ञा दो माँ ! कविता !

कविता सिसकती है, माँ रोती है । तभी दोनों बच्चों का प्रवेश । गरिमा पहले तो माँ और दादी को रोती देखकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रहती है फिर दौड़ कर शेखर से चिपट जाती है ।

गरिमा : पापा !

शेखर : मेरे बेटे ! एक तू ही तो इस घर में ऐसी निकली, जिसने मुझे पहचान लिया । अन्यथा सब बेगाने-बेगाने, अनजान से ।

कविता सिसकियाँ भरती है, नीलिमा दौड़कर कुमार से चिपट जाती है ।

नीलिमा : पापा !

कुमार : (नीलिमा को गोद में उठाकर प्यार करता है) बेटे ! वे रहे तुम्हारे पापा ।

पर नीलिमा शेखर की ओर नहीं बढ़ती, सहमी हुई

कुमार से चिपटी रहती है। कुमार प्यार से नीलिमा की पीठ थपथपाता है और फिर गोद से उतार देता है। दीवार पर टँगे कोट को उतारकर पहनता है, फिर उतारकर रख देता है।

कुमार : अच्छा अलविदा मेरे दोस्त ! मैं चाहता तो मर सकता था, पर ज़िन्दगी में बेमौत मरने में भी कोई मज़ा नहीं। दर्दों से भरी ज़िन्दगी को जितना जिया जाये उतना ही······।

शेखर : कुमार ! नहीं, नहीं, तुम्हें यहीं रहना है इसी घर में।

कुमार : वह अधिकार मैं खो चुका हूँ शेखर ! माफ़ करना सब अनजाने में हुआ। बदनसीब लोग दुनिया में आकर सोचते हैं कि अपनी बदनसीबियों को दुनिया के दामन में डालकर हल्के हो जायेंगे, पर दामन उनका अपना ही भारी होता चला जाता है। माफ़ करना मेरे दोस्त ! इतनी बड़ी दुनिया में जीने के बहुत सारे रास्ते हैं। मैं मरूँगा नहीं। मैंने तुम्हारे साथ कोई छल नहीं किया, मेरा कुछ दोष नहीं। मुझे क्षमा करना माँ, कविता भा······भी······ आज फिर तुम्हें उसी पुराने सम्बोधन से सम्बोधित कर रहा हूँ। मुझे माफ़ करना। याद कर लेना कभी कोई बनजारा अपने काफ़िले से कटकर घर बसाकर बैठ गया था। बनजारा तो बनजारा ही है, अब उसे जाना ही है। मुझे अब कोई भी नहीं रोक सकता शेखर ! ज़िन्दगी की सारी खुशियों से भगवान् तुम्हारा दामन भर दे।

लड़खड़ाता है, खाट पर बैठ जाता है, आँखें बन्द कर लेता है। कविता और माँ सुबकती हैं। बच्चे रोने लगते हैं। शेखर कुमार के पास बैठकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लेता है।

कुमार : सारे दरवाज़े खोल दो माँ ! घर में गन्दी हवायें भर गयी थीं, उन्हें निकल जाने दो। ज़िन्दगी के आख़िरी लमहों में तुम सबके प्यार का सहारा लेकर मैं जा रहा हूँ। अच्छा, अलविदा !

खड़ा होता है, जाने के लिए दायीं ओर बढ़ता है, शेखर उसका हाथ पकड़ता है, पर वह हाथ छुड़ा लेता है।

कुमार : मेरे हाथ को मत छुओ शेखर ! मैं गुनहगार हूँ, मैं पापी हूँ···मैंने अपने दोस्त की गृहस्थी उजाड़ी है···। मेरी

मंजिल मुझे पुकार रही है···मैं जा रहा हूं।

द्रुत गति से बाहर चला जाता है।

शेखर : रुको कुमार ! मेरी बात तो सुनो······सुनो तो सही।

बाहर की ओर जाता है। एक क्षण बाद ही लौट आता है।

शेखर : वह बड़ा ज़िद्दी है शुरू से ही, पर मैं उसे लौटा लाऊँगा। माँ मैं······।

माँ : रहने दो शेखर ! उसे जाने दो। वह नहीं आयेगा, अब कभी······नहीं आयेगा।

सुबकती है। कविता और बच्चे भी सुबकते हैं। शेखर मस्तक पर हाथ रखकर चारपाई पर बैठ जाता है। बाहर से पगली जमीला के गीत की कड़ियाँ पुनः सुनायी देती हैं—

हम पीछे रह गये
बढ़ गया काफ़िला
यह तो टूटना था
आख़िरी सिलसिला।
यूँ लुटती हैं उम्मीदें सभी-सभी
बनजारा ज़िन्दगी।



२

अँधेरा···अँधेरा···और अँधेरा

पात्र

माँ — मनो की माँ

मनो — एक युवती (आयु २१ वर्ष)

श्यामू — गाँव के जमींदार का विकृत-मस्तिष्क बेटा (आयु ३० वर्ष)

चार पुरुष — पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा

स्त्री

पुरुष

[राम गंगा के किनारे बसे किसी बड़े गाँव के बाहर छोटी-सी सराय। आधी रात का समय।

रंगमंच पर कुछ स्पष्ट दिखायी नहीं देता। कुछ धूमिल-धूमिल-सी वस्तुएँ यत्र-तत्र बिखरी-बिखरी-सी लगती हैं। सामने शायद कोई चौकी बिछी है, जिस पर कोई बैठा है, पूजा करने की आकृति में। पता नहीं कौन है? पास की बिछी खाट पर कोई लेटा हुआ है या क्या है दिखायी नहीं देता अँधेरे में। पीछे से केवल कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें उभरती हैं और बीच-बीच में चौकीदार का स्वर…जागते रहो, जागते रहो…कभी पास से सुनाई देता है और कभी दूर से। कभी-कभी सन्नाटे को चीरती दूर से आती अस्पष्ट-सी संगीत-लहरी सुनाई दे जाती है। बाहर बारह बार घण्टे सुनाई देते हैं। बारह बजे हैं, अब यह निश्चित है।

पूजा करती आकृति धीरे-धीरे उठती है और पासवाली चारपाई की ओर झुकती है, शायद कोई चादर-सी उढ़ाने का उपक्रम कर रही है, तभी एकाएक लेटी हुई आकृति उठकर बैठ जाती है।]

लेटी हुई आकृति बैठकर : क्या है म?

माँ : कुछ नहीं बेटी! मैंने सोचा—तुझे उढ़ा दूँ। कपड़ा ठीक तरह ढक कर नहीं सोती। ठण्ड लग जायेगी, तो क्या होगा? पैसा भी चाहिये और आदमी भी……।

बेटी : हूँ…तो आज भी तुम्हें नींद नहीं आई, माँ! रात-रात भर जागकर न जाने क्या करती रहती हो?

माँ : करने को है ही क्या, बेटी? सोना चाहती हूँ, पर कहाँ सो पाती हूँ? लगता है कोई मेरे सिरहाने खड़ा मुझे गड्ढे में धकेल देना चाहता है। आँखें बन्द करती हूँ, तो एक तूफ़ान-

गा उठता लगने लगता है। क्या करूँ बेटी ? समझ में कुछ भी तो नहीं आता।

(बेटी उठती है, अँगड़ाई लेती है और तकिये के नीचे रखी हुई दियासलाई निकालकर पास स्टूल पर रखी लालटेन जलाती है। हल्की-हल्की रोशनी में रंगमंच पर रखी चीजें उभरने लगती हैं। रंगमंच के दाहिनी ओर एक चूल्हा रखा है, जिसमें दो-चार लकड़ियाँ लगी हैं बुझी हुई। चूल्हे पर पतीली रखी है। आस-पास पांच-सात बर्तन रखे हैं बेतरतीब। चूल्हे से थोड़ी दूर पर एक लकड़ी की छोटी-सी आलमारी है। चौकी चौड़ाई में बिछी है और चारपाई लम्बाई में। रंगमंच के बीच में एक खिड़की है जो बाहर की ओर खुलती है। बायीं ओर बाहर जाने का दरवाजा है। दाहिनी ओर का दरवाजा दूसरी कोठरी की ओर खुलता है।

लड़की उठकर आलमारी खोलती है, और कुछ निकालती है। फिर माँ को लाकर देती है।)

बेटी : लो माँ ! गोली खा लो। मुँह में डालते ही नींद आ जायेगी। कल ही वैद्य जी ने दी थी।

माँ : गोली खा-खाकर जिन्दगी की न जाने कितनी रातें बीती, बेटी ! अब तो जगने ही दे। देखूँ कब तक जगती हूँ। थकूँगी तो आप ही सो जाऊँगी। तू सो जा, बेटी !

बेटी : अब मुझे भी कहाँ नींद आती है, माँ ! एक बार उचट जाये नींद, तो फिर लाख यत्न करने पर भी कहाँ आदमी सो पाता है ?

माँ : हाँ सो तो है ही। न तुझे सोने देती हूँ और न खुद···

बेटी : कैसी बातें करती हो माँ ! (कुछ सोचकर) कल रामू काका की आयी चिट्ठी के बारे में क्या सोचा, माँ ? यहाँ तो सूने स्थान पर रहते बड़ा डर लगता है। अब तो गाँव ही चलो। रात को कहीं कोई जंगली जानवर···

माँ : आदमी ही सबसे बड़ा जानवर हो जाता है, मनी ! और फिर इन जानवरों की दुनिया में रहना है, तो डरना भी क्या ?

मनी : फिर भी मन तो ऊबता ही है, माँ ! बड़ी याद आती है रामू काका की। कितना प्यार करते हैं ! नम्मो को, बिम्मो

की। बचपन की वे सहेलियाँ, माँ ! तुम्हें याद है कम्मो कितनी गोरी थी ? उसके गोरे-गोरे मुखड़े पर जब मैं हाथ फेरकर कहती कि कम्मो, तेरे गाल तो ऐसे हैं जैसे मक्खन के गोले, तो वह मुझे चपत लगाकर कहती थी कि और तेरे ऐसे जैसे···(लजा जाती है)।

माँ : जैसे गुलाब के फूल। है न ! मेरी लाड़ली बेटी ऐसी ही तो है। (हँसती है) अरे मनी ! वे दिन भी क्या दिन थे ? तू छोटी थी। जब तेरा बापू तुझे अपने कन्धे पर चढ़ाकर घूमने निकलता था, तो कोई भी तुझे लड़की नहीं समझता था। सब कहते थे लड़के को घुमाने जा रहे हो ? तो वे कहते—मनी मेरा बेटा ही तो है। सच तुझे वे कितना प्यार करते थे !

बायीं ओर के द्वार पर थपथपाहट सुनाई देती है।

मनी : कोई यात्री मालूम होता है, माँ !

माँ : हाँ और क्या ? तू बैठ, मैं जाती हूँ।

जाती है। बाहर से कुछ आवाजें उभरती हैं।

स्त्री-स्वर : बड़ा सीरियस केस था। थोड़ी देर बाद पहुँचते तो···

पुरुष-स्वर : उसका बचना कठिन था। अब केस कण्ट्रोल में आ गया है। भाग्य से जो इंजेक्शन जरूरी थे, मेरे बक्स में निकल आये।

स्त्री-स्वर : जिसकी जिन्दगी होती है, उसे कोई नहीं मार सकता··· ।

पुरुष-स्वर : यह तो है ही (थोड़ा रुककर)···जब-जब मैं इस क़स्बे में आता हूँ तो न जाने···ये क़स्बा···ये नदी···ये गाँव, जाने कैसा-कैसा लगने लगता है··· ।

दरवाजा खुलने पर दोनों अन्दर आ जाते हैं।

पुरुष : हमें रात भर के लिए स्थान चाहिये। आपकी सराय के अतिरिक्त यहाँ और कोई स्थान है ही नहीं रुकने को।

माँ : आइये मेरे साथ। (मनी से) मनी···दो नम्बर की कोठरी खाली हो गई है, जरा दिखा दे, बेटो ! (आगन्तुक पुरुष से) हाँ बाबू जी ! २४ घण्टों के १० रुपये होते हैं। खाने-पीने का इन्तजाम हमारे यहाँ नहीं है। केवल चाय चाहेंगे तो मिल सकेगी।

पुरुष : ···नहीं चाय नहीं चाहिये और हमें चौबीस घण्टे कहाँ रुकना है, दिन निकला और हम गये··· ।

स्त्री : वह तो अचानक अँधेरी रात पड़ गयी, वरना हम रुकते थोड़े

हो। फिर भी रुपये तो आपको मिलेंगे ही, पूरे १० रुपये, आप चिन्ता न करें।

पुरुष : हाँ सो तो है ही। आप चिन्ता न करें।

मनी स्त्री-पुरुष के साथ दायीं ओर चली जाती है।

माँ : उठती है (इधर-उधर घूमती है—हँसती है) जिन्दगी भी क्या खूब खेलती है। ब्याह हुआ, शहर की लड़की ब्याह के बाद···रंगीन चूनर पहनकर गाँव में ससुराल आ गयी और फिर···फिर जिसने सुहाग चढ़ाया था···उसने ही···काली चादर···डाल दी···आँखें खुलीं···राक्षसों से घिरी, जिन्दगी बोझ लगने लगी···केवल दो हज़ार···बढ़ते-बढ़ते···दस हज़ार···हे राम! दरवाज़ा खुला छोड़ दो···तो चोर···कभी-न-कभी तो घर में घुसेंगे ही···मेरे घर में भी चोर घुस आये थे उस दिन—अँधेरी रात के आलम में। जिन्हें अपना समझती थी, वे तो दुश्मन थे जनम-जनम के···(फिर बिस्तर पर बैठ जाती हैं। तकिये के नीचे से बैग निकालती है—और कुछ गिनने का प्रयास करती है)···एक···दो···तीन···चार···पाँच···छः···अभी तो पूरे चार कम हैं। हे भगवान्, वह जानवर इतनी लम्बी रकम··· !

मनी का प्रवेश।

मनी : किस जानवर की बात कर रही हो, माँ ?

माँ : जानवर और कौन ? जानवर, जानवर है, बेटी !

मनी : और तुम रकम के बारे में भी कुछ कह रही थी। कैसी रकम, माँ ?

माँ : अरे ! तू क्या जाने जिन्दगी के झमेलों को, बेटी ? तू सो जा··· अभी तो साढ़े बारह ही बजे हैं। दिन भर बदन टूटेगा।

मनी : नहीं माँ ! अब नींद कहाँ आती है।

तभी आँधी आने लगती है—भीषण तूफ़ान लगता है। साँय-साँय की ध्वनि से मनी डर कर माँ के पास खिसक आती है।

मनी : डर लगता है माँ ! कैसी भयंकर आँधी है ? चारों ओर साँय-साँय करता अँधेरा ही अँधेरा।

माँ : हाँ बेटी ! आ जा तू मेरे पास आ जा। यह तूफ़ान मुझे भी बहुत डराता है। ऐसी ही तो एक रात थी, जब आँधी

में तेरा बापू नाव के साथ बीच में ही फँस गया था। रात भर मैं इन्तजार करती रही और सवेरा होते ही आँखें फाड़े नदी के किनारे उनको ढूँढती रही···पर वे नहीं लौटे फिर कभी···नदी ने अपनी बाँहों में समेट लिया पूरी नाव को···तेरे बापू को···तेरे भय्या को। रह गयी तू और मैं अकेली···।

मनी : अब भय्या कितना बड़ा होता, माँ ?

माँ : पच्चीस बरस का होता, बेटी ! पाँच बरस का तो था ही, और तू तो तब केवल एक बरस की थी। तू क्या जाने ?

मनी : बापू कितने बड़े थे माँ ! उस समय ?

माँ : तीस बरस की जवान उमर में ही तो यह सब हो गया। गाँववाले उन्हें देखकर कहते थे कि ऐसा सजीला जवान गाँव भर में नहीं है।

मनी : सुन्दर तो माँ, रामू काका भी हैं।

माँ : (उपेक्षा से) हाँ, पर तेरे बापू की तरह नहीं।

धीरे-धीरे तूफ़ान तेज़ी पकड़ रहा है।

माँ : मनी बेटे ! सामने की खिड़की बन्द कर दे।

मनी : (खिड़की से झाँककर) उफ़ माँ ! आँधी है कि···अरे माँ ! देखो वह क्या है। हाथ में लालटेन लिये ये कुछ डोलती-सी परछाइयाँ। देखो माँ !

माँ : (उठकर खिड़की में से बाहर झाँकते हुए) किसी को ढूँढने जा रहे होंगे, बेटी ! कोई अभागा फिर घर नहीं लौटा होगा। तेरा बापू भी तो घर नहीं लौटा था तो गाँववाले उन्हें ढूँढने के लिए लालटेन हाथ में लिये तूफ़ान में ही निकल पड़े थे।

मनी : उफ़ माँ ! कितनी अँधियारी रात है ?

माँ : हाँ बेटी ! वह भी अँधियारी रात थी। इसी सराय में तेरा बापू रहता था। तूफ़ान के पहले किसी मुसाफिर की गर्भवती स्त्री को शहर छोड़ने गया था नाव से, तो फिर वह लौटा ही नहीं। कहते हैं लौटते वक्त तूफ़ान में नाव फँस गयी।

मनी : तो फिर भय्या कैसे साथ चला गया ?

माँ : वे मंगल को अपने साथ ही रखते थे। कहते थे मर्द की जात को सब काम आने चाहियें।

मनी : (डूबते स्वर में) बेचारे बापू ! बेचारा भय्या ! माँ ! हम

लोग कितने अभागे हैं ?

बाहर कुछ कोलाहल-सा होता है। मिली-जुली कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ। मनी और माँ सतर्क हो जाती हैं और मिली-जुली आवाजों को सुनने की चेष्टा करती हैं।

पहला स्वर : इधर नहीं, उधर चलो।

दूसरा स्वर : श्यामू तो पूरब की ओर गया था।

तीसरा स्वर : पूरब की ओर तो तूफ़ान है। अँधेरा है और···

चौथा स्वर : अरे भय्या ! अँधेरा तो चारों ओर है और यह तूफ़ान मचाता तूफ़ान भी···

दरवाजे पर थपथप। माँ दरवाजा खोलती है। चार पुरुष अन्दर आ जाते हैं। मनी और माँ पीछे हटती हैं।

पहला : क्या श्यामू यहाँ आया है ?

माँ : कौन श्यामू ? क्या वही···सेठ जी का पागल बेटा ?

दूसरा : हाँ आज शाम से ही घर नहीं लौटा।

चौथा : आज नदी की ओर गया था शाम को वह। तब से आया ही नहीं।

तीसरा : तूफ़ान के बीच में पता नहीं कहाँ फँस गया है ?

मनी : आज शाम तो वह नदी किनारे घूम रहा था।

पहला : नदी किनारे ?

चौथा : पर वहाँ तो अब नहीं है।

दूसरा : हम ढूँढ-ढूँढ हार गये।

तीसरा : चलो भय्या ! एक बार फिर ढूँढ लें। श्यामू यहाँ भी नहीं मिला।

सब वापिस लौटते हैं। बीच-बीच में साँय-साँय करती आँधी ध्यान भंग करती है।

माँ : बेचारा श्यामू भी नहीं मिल रहा। तूफ़ान ने कहीं उसे भी समेट तो नहीं लिया अपनी बाँहों में ?

मनी : बेचारा जिन्दगी से कितना ऊबा हुआ था ! कोई भी तो उसके लिए अपना कहने को इस दुनिया में नहीं है। पत्नी मर गयी, पुत्र गया और फिर सौतेली माँ—सौतेले भाई ! चैन न लेने देते थे हत्यारे एक पल भी।

माँ : बेचारा अभागा श्यामू !

द्वार पर थपथपाहट।

मनी : फिर कोई आया दीखता है, माँ !

माँ : तू रुक मनी, मैं दरवाज़ा खोलती हूँ।

माँ दरवाज़ा खोलती है। काला कम्बल लपेटे एक आकृति प्रवेश करती है।

माँ : कौन हो तुम ? बोलो, बोलते क्यों नहीं ?

आकृति : चुप रहो···धीरे-धीरे बोलो (दरवाज़े की ओर देखकर) वे मुझे पकड़ लेंगे। मैं क़ैदखाने से भाग आया हूँ·······

मनी : कौन···कौन···श्यामू !

श्यामू : मेरा नाम मत लो, वे सुन लेंगे, मनी ! वे सुन लेंगे। देखो काकी ! कल रात हण्टरों की मार, मेरी कमर लहू-लुहान हो गयी है।

कमर दिखाने को बढ़ता है।

माँ : रहने दे, श्यामू ! वे हत्यारे राक्षस तो ऐसा करेंगे ही, करते ही रहे हैं।

श्यामू : अब मैं कभी नहीं जाऊँगा, काकी माँ ! मुझे कहीं छिपा लो।

माँ : कैसे छिपा ले तुझे तेरी काकी माँ, बेटे ! तू तो मुझे अपने मंगल जैसा ही लगता है। पर वे हत्यारे···वे हत्यारे··· ।

मनी : आधी सम्पत्ति का हक़दार है श्यामू, इसलिए गरीब को जिन्दा नहीं रहने देना चाहते।

श्यामू : मैं नहीं जाऊँगा, काकी माँ ! कहते हैं मैं पागल हूँ। मुझ पर सड़क के लड़के कंकड़ उछालते हैं। मुझे मारते हैं। मैं यहीं रहूँगा, मनी ! काकी माँ ! मैं यहीं रहूँगा···मैं पागल नहीं हूँ···मैं पागल नहीं हूँ···

माँ : ले मनी ! मैं श्यामू को थोड़ा आराम करने के लिए जगह दे दूँ। बेचारा थक गया होगा। कब से भटक रहा है ज़िन्दगी के अँधेरे से उजाले में आने के लिए। बेचारा श्यामू !

माँ श्यामू को लेकर जाती है। मनी माँ की चारपाई पर बैठ जाती है। माँ का तकिया हटाती है। नीचे से कपड़े का बैग निकल आता है। रुपयों की कुछ गड्डियाँ ज़मीन पर गिर पड़ती हैं। मनी घबरा जाती है··· ।

इतने सारे रुपये ? फिर माँ किस रक़म की बात करती रहती है ? (बैग में से कोई कागज़ मुड़ा हुआ उसके हाथ में आ जाता है।) यह कैसा कागज़ है ? किसी की पुरानी

चिट्ठी लगती है। (खोलकर पढ़ने लगती है)···
प्रिय मनी की माँ !
मैं तुझे भाभी नही कहूँगा। मैंने तुझे सदा प्रेम की नजरों से देखा है। मैं चाहता हूँ तुझे अपनी पत्नी बनाना। तब तेरा, मेरा और मनी का सबका जीवन सुखमय हो जायगा। रही मेरे दस हजार रुपयों की बात। तुम्हारे मेरे रुपयों में अन्तर ही क्या है? मैं तुमसे रुपये नही लूँगा। फिर वे तो केवल दो हजार थे। ब्याज से आज दस हजार बैठते है। वे रुपये तो मैंने भय्या को सराय चलाने के लिए दिये थे, सो समझ लो उसके साथ ही डूब गये। रह गयी मनी की बात। वह सुन्दर है, उसके लिए अच्छे-अच्छे खरीदार आयेंगे, चिन्ता न करना।

तुम्हारा ही
रामू

मनी : (पत्र हाथ से छूट जाता है) रामू काका! तुम्हारा यह वीभत्स रूप? छी: छी:? मैं अब तक तुम्हें आदर देती आयी। समझ गयी आज सब कुछ।···माँ गाँव चलकर क्यों नही रहना चाहती? वहाँ तुम···तुम जैसे जानवर जो रहते है। तुम···आदमी नही···पिशाच हो···पिशाच···

माँ का प्रवेश। मनी के हाथों से छूटे हुए पत्र को देखकर, फिर तकिये के पास पड़े बैग को देखती है, उठाती है।

माँ : तूने आखिर पढ़ ही लिया यह खत। जिस राज को मैं राज ही रखना चाहती थी, आज तू भी जान गयी सब कुछ। एक दिन तो जानना ही था।

मनी : हाँ माँ, तूफान बीत गया है। तू मत डर। तेरी मनी ऐसे-ऐसे दस रामू काकाओं को भुगत सकती है। भेड़िया कहीं का! बेटी के लिए खरीदार टटोलता है।

माँ : (सिसकती है)

मनी : तुझे अक्सर रुपये गिनते देखा है। आज समझी दस हजार रुपयों के भूत ने तुझे क्यों परेशान कर रखा था। हम कर्जदार है रामू काका के···का···का नही नही···काका नही···पाई-पाई चुकायेंगे हम···उसका पैसा भी हमारे लिए पाप है। (हाथों के कंगन और गले की माला उतारकर) ये सब कुछ कल ही बेचकर कर्जा चुकाना है, माँ! बुरे

आदमियों का कर्जा अधिक समय तक रखना ठीक नहीं।

मां : (सिसकती है)

मनी : अकेले ही दुःख का बोझा ढोती रही। तू भी खूब है, मां! देख रात बीत रही है। तूने मुझे सदा गांव से दूर रखा—शहर में पढ़ाया। क्या मेरी सारी शिक्षा यूं ही चली जायगी?

मां : बेटी मनी!

मनी : (खिड़की का दरवाजा खोलकर बाहर झांकती है) अब तो आंधी थम गयी मां! लो सवेरा होने लगा। काली रात के बाद उजला सवेरा हमारे जीवन में भी आ रहा है, मां! दुर्भाग्य के साये अब हमें नहीं घेरे रख सकते—नहीं घेरे रख सकते···मां!···

तभी रात जो स्त्री-पुरुष आये थे उनका रंगमंच पर प्रवेश।

पुरुष : लो मां! अपने दस रुपये।

स्त्री : धन्यवाद मां! तूफान में फँस जाते हम लोग। अच्छा ही हुआ, हम रात वापिस नहीं लौटे।

मां : जीते रहो बेटा! तुम लोग।

दोनों का प्रस्थान।

मां : मनी? देख ले जरा जाकर। सामान तो हमारा सब सही सलामत है न?

मनी जाती है।

मां : कभी-कभी ऐसे लुटेरे आ जाते हैं कि कुछ पूछो मत—एक भलामानस तो पिछले साल हमारा कोरा कम्बल ही लेके चलता बना था। बड़ा बुरा जमाना आ गया।

मनी का प्रवेश।

मनी : मां! सब कुछ ठीक है। पर देख यह डायरी तो बेचारे की छूट ही गयी और साथ ही यह लॉकिट भी गले का। शायद सोते समय उतार कर रख दिया था। जाते समय भूल गये। अभी तो कुछ ही दूर गये होंगे।

मां : (लॉकेट को देखती है और लॉकेट में से तावीज निकाल कर गौर से देखती है। भावावेश में) मनी! मनी! यह तावीज···यह तावीज···तो वही है जो तेरे बापू को एक साधु ने दिया था और उन्होंने मंगल के गले में···

मनी : (आश्चर्य से) भय्या के गले में बापू ने तावीज बांधा था?

(तावीज देखती है)।

माँ : कहाँ गये ये लोग ? ये मेरे मंगल को जानते होंगे, जरूर जानते होंगे। मैं जा रही हूँ। (दौड़ती है)।

मनी : (माँ को रोककर) जल्दी ठीक नहीं है, माँ ! वे भी तो अपने छूटे सामान को लेने आयेंगे ही। रुको तो सही, यह डायरी भी देख लो। (मनी डायरी खोलती है, फिर पढ़ती है) डा० सुमंगल प्रकाश —चन्दौसी।

माँ : सुमंगल प्रकाश···डाक्टर···अपना मंगल···तेरे बापू कहा करते थे मंगल डाक्टर बनेगा बड़ा होकर··· वह डाक्टर बनेगा···जरूर डाक्टर बनेगा। (हाँफ जाती है। कुछ रुककर) मंगल डाक्टर बन गया···मंगल डाक्टर बन गया···मेरा मंगल (चीखती है —विक्षिप्त-सी हो जाती है···कभी बैठती है, कभी घूमने लगती है·। बाहर भागती है, मनी दौड़कर पकड़ लेती है।)

मनी : (डायरी पढ़ते हुए)

कुछ याद नहीं है। धुँधली-धुँधली तस्वीरें हैं···कुछ मिट गयी हैं···कुछ मिट जायेंगी ? कोई गाँव है···। नाव है···तूफ़ान है और···अब तो सब कुछ बदल गया है। कहाँ गये बचपन के साथी···वे लोग जो अपने थे ? टूटी-टूटी कड़ियों को जोड़कर जो कुछ सूत्र बनते हैं, वे भी टूट जाते हैं। क्या कहा करते थे बचपन में मुझे माँ-बापू···सेठ चुन्नीलाल का दत्तक पुत्र हूँ···मैं सुमंगल प्रकाश। डाक्टर कामना मेरी पत्नी है। कभी-कभी सीरियस केस के लिए मुझे किसी गाँव में जाना पड़ता है तो माँ की···बापू की याद आती है। नन्हीं गुड़िया-सी कोई बहन थी···शायद मेरी···आँखें ढूँढती हैं पर···कहाँ है वे सब लोग···कहाँ गया है अतीत··· ? वर्तमान···में उलझकर खो गया है अतीत और सुलझाना चाहता है मन तो, उलझ जाता है और भी। कैसी उलझन है कभी न सुलझने वाली···

माँ : (चीखकर) मेरा मंगल···मेरा मंगल था···वह डाक्टर बन गया। अहा, वह डाक्टर हो गया··· अजी सुनते हो, तुम्हारा मंगल डाक्टर बन गया—

मनी : माँ ! तूफ़ान के बाद सवेरा आया है। इतनी जल्दी न करो। जिन्दगी चलते हुए अपनी राह से भटक गयी थी ? अब उसे फिर रास्ता मिल गया है। इन्सानियत के दुश्मन

हैवानों ने हमारा शिकार करना चाहा था, वे भी हार गये हैं। अंधेरा बदनाम हो गया, उसने गलत जगह आकर बसेरा ले लिया था।

मां : (विक्षिप्त-सी देखती है) मंगल···मंगल···डाक्टर···

मनी : दिल छोटा न करो, मां ! खुशियों के लिए बड़ा दामन चाहिये···बड़ा···बहुत बड़ा।

मां : (विक्षिप्त-सी –हँसती है, अट्टहास करती है।)

मनी : मां ! मां ! क्या हुआ तुझे ? मां ! क्या···हुआ मां··· (मां को झकझोरती है)

मां : (हँसती है, हँसती है, हँसती चली जाती है, हँसती है, चीखती है)— मेरा मंगल डाक्टर हो गया···डाक्टर··· डाक्टर···मेरा मंगल डाक्टर हो गया········· मेरा मंगल डाक्टर हो गया···अंधेरा···तूफ़ान······मनी···मनी······ (हँसती है, हँसे चली जाती है) मेरा मंगल···डाक्टर··· तूफ़ान···अंधेरा···

मनी : मां, मां···यह तुझे क्या हो गया मां ! यह तुझे क्या हो गया ? अंधेरे के बाद यह कैसा सवेरा ? नहीं मां,···नहीं मां···यह नहीं, यह नहीं···(मनी मां से चिपट जाती है)।

पर्दा गिरता है।



३

एक समुन्दर गहरा सा

पात्र

शान्ति	माँ
प्रनीता	पुत्र (शरण) की पत्नी
चेतन	शरण का मित्र
रचना	पुत्री
नन्दा	रचना की बहन
मन्थन	रचना का भाई

[एक साधारण कमरा। कमरे में एक ओर खाट पर बिस्तर बिछा है जिस पर शान्ति रजाई ओढ़े बैठी है। एक ओर एक साधारण मेज़ है जिस पर मेजपोश बिछा है और एक फूलदान रखा हुआ है। सामने की ओर दीवार पर एक चित्र टँगा है। कमरे के दोनों ओर दो दरवाज़े हैं। एक सड़क की ओर जाता है, दूसरा घर के दूसरे कमरे की ओर खुलता है। खाट के पास एक मशीन रखी है। समय—सायंकाल।

पर्दा खुलने पर रचना मशीन चलाती दृष्टिगत होती है। पास में कुछ सिले-अधसिले कपड़ों का ढेर है। कुर्सी पर बैठा मन्थन कुछ पढ़ रहा है।

खाट पर लेटी शान्ति को खाँसी उठती है। वह उठकर बैठ जाती है।]

शान्ति : रचना बेटी ! अब तो दिन छिप रहा है।

रचना : हाँ माँ ! आज कैसी तबियत है ?

शान्ति : मुझे क्या होनेवाला है, बेटी ! (रुककर) आज भी शरण की कोई चिट्ठी नहीं आई क्या ?

रचना : नहीं माँ !

शान्ति : (मन्थन से) अरे बेटा ! तू ही एक चिट्ठी शरण को लिख दे ना ! हाँ, यह जरूर लिख दीजो, माँ का मुँह देखना चाहो तो आ जाओ।

मन्थन : कितने पत्र लिख चुका हूँ, माँ ! एक का भी तो उत्तर नहीं देते भय्या। पर तुम कहती हो तो जरूर लिखूँगा।

शान्ति : बड़ा राजा बेटा है मेरा मन्थन ! हाँ री रचना ! देखियो, दोनों वक्त मिल रहे हैं, अब तो सीना बन्द कर दे। तेरी दादी कहा करती थीं कि दोनों वक्त मिले काम करने

से चिड़ियें आँखों की रोशनी चुगकर ले जाती है और फिर हाथ भी तो दुखते होंगे मशीन चलाते-चलाते।

रचना : नहीं माँ ! हाथों को अब कष्ट नहीं होता, कष्ट तो इन्हें तब होता है, जब काम न हो। तुम जानती हो माँ, कल १५ तारीख है। मन्थन और नन्दा की फीस जायेगी। घर में राशन भी समाप्त हो रहा है।

शान्ति : जानती हूँ, बेटी ! सब जानती हूँ। अरे मन्थन बेटा ! तू ही अपनी दिदिया का कुछ हाथ बँटा दे।

मन्थन : (हँसता है) तुम भी माँ ! मज़ाक करती हो, अब मैं भी बैठकर दीदी के साथ सिलाई करने लगूँ, तो कल तुम ही मुझे दर्जी कह कर चिढ़ाओगी। (उठता है) लो तुम भी मानोगी कि मन्थन बेटा भी बस मन्थन ही है। (रचना से) बताओ मेरी दर्जिन दिदिया, क्या करूँ ? (रचना के पास बैठकर कपड़ों की उल्टी-सीधी तह करता है।)

रचना : हट बावले ! तह भी ठीक नहीं बनानी आती तुझे तो।

मन्थन : हाँ दीदी ! (कुछ रुककर) आज अभी तक भाभी नहीं लौटीं। साँझ हो गयी।

रचना : आज स्कूल में कोई उत्सव है, भाभी उसमें व्यस्त हैं, पर अब तो आना ही चाहिये।

शान्ति की खाँसी उभरती है। वह उठकर घर के अन्दर चली जाती है। दूसरे द्वार से प्रनीता का प्रवेश। मुख पर थका-थका-सा भाव है, शरीर शिथिल है। खाट पर बैठ जाती है।

रचना : आज बहुत थक गयीं क्या भाभी ? सुबह से ये वक्त हो गया।

प्रनीता : हाँ रचना ! थक तो सचमुच गयी। लगता है तुम लोगों ने भी अभी तक चाय नहीं पी। मन्थन भय्या कैसे मुरझाये-से लग रहे हैं ! मैंने दस बार तुम लोगों से कह दिया कि मेरा इन्तज़ार मत किया करो, पर तुम लोग हो कि सुनते ही नहीं।

मन्थन : हाँ भाभी ! कुछ कान बहरे हो जाते हैं ऐसी बातों के लिए। बोलो अब सब साथ चाय लेंगे तो आनन्द आयेगा या तुम अकेली रह जातीं, हम चाय ले लेते तब आनन्द आता।

प्रनीता : बातें खूब बनानी आ गयी हैं, मन्थन भय्या ! अच्छा चलो सब, दो मिनट में चाय बनती है। माँ शायद रसोई में

पहुँच गयी हूँ।

रचना : तुम लोग चलो, मैं हाथ के काम को समेट कर आती हूँ।

मन्थन और प्रनीता का प्रस्थान

रचना : (थकी-सी अँगड़ाई लेती है) मन के सूने आकाश पर झुकी-झुकी ये पीड़ा की बदलियाँ और दर्द के समुन्दर में उठती ये लहरें··· ।

चेतन का प्रवेश ।

चेतन : लहरों से कैसी शिकायतें हो रही हैं रचना, ! लहरें तो उठती हैं तो गिरेंगी भी । जानती हो

एक लहर ने चाहा उठकर मैं कछार को छू लूँ ।
अँगड़ाई ली एक कली ने मैं बहार बन फूलूँ ।

रचना : जब देखो चेतन, तुम्हें कविता ही सूझती रहती है ।

चेतन : और जब मेरे काव्य की प्रेरणा मेरे समक्ष हो तो क्या कहने । क्यों रचना ?

रचना : हटो चेतन ! तुम्हें सदैव परिहास का काम ही है और मैं टूटती जाती हूँ इस जर्जर होती गृहस्थी की चिन्ता में । सारा परिवार टूट रहा है, शक्ति बिखर रही है । अब तो मकान भी हाथों से निकल गया । तरुण भय्या की पढ़ाई के लिए परिवार का एक-एक सदस्य मिट रहा है—मिट चुका है—मन थक गया है अब तो······

चेतन : तुमने एक कहानी सुनी है रचना ! थपेड़ों से लड़ती एक नाव की······विशाल समुन्दर सी नदी, जिसमें लहरों के भीषण झंझावात और नन्हीं-सी नाव······लेकिन अन्त में नाव ने थपेड़ों को परास्त कर दिया······और अब तुम ऊब रही हो जीवन के संघर्षों से और खोज रही हो कोई विश्रामदायिनी छाया······कोई······

रचना : कोई सहारा···यही न कहना चाहते हो चेतन ! नहीं ! नहीं ! छाया, स्वप्न, कल्पना, ये सब तो कवियों के लिए हैं, हम सब लोगों के लिए इनकी अपेक्षा नहीं ।

नन्दा का चाय लेकर प्रवेश ।

नन्दा दोनों को एक-एक प्याला चाय बनाकर देती है ।

चेतन : (नन्दा से) कहो कैसी पढ़ाई चल रही है, नन्दा ?

नन्दा : (लजा कर) ठीक ही है ।

रचना : पूरे क्लास में टॉप करके भी कैसे मरे-मरे स्वर में बोल रही है, नन्दा !

नन्दा : हटो भी दीदी, तुम तो तारीफ़ के पुल बांधती रहती हो।

नन्दा चली जाती है। रचना चाय का प्याला एक ओर रख देती है। चेतन भी प्याला लेकर रखता है।

रचना : (एकाएक कराहती है) उफ़ यह क्या होने लगता है प्राणों में हलचल सी···जैसे समुन्दर में ऊँचे-ऊँचे ज्वार उठ रहे हों। चेतन ! यह दर्द मेरी जान ले लेगा। (खाट का सहारा ले लेती है)

चेतन : फिर दर्द उठा है, रचना ! कितनी बार कहा डाक्टर के यहाँ चलो। जिन्दगी को ग़मगीनियाँ उजाड़ देंगी, रचना ! उजाड़ देंगी। इतना मत झेलो।

शान्ति का हाथ में मोटी छलनी लिए हुए प्रवेश। पीछे-पीछे मन्थन एक छोटे कनस्तर में कुछ लाता है और रचना के पास ही रख देता है। शान्ति बैठ जाती है।

शान्ति : क्या फिर से दर्द हो गया ? मानती ही नहीं, सुबह से उठकर जो काम पर बैठी, उठी ही नहीं। लाख कहती हूँ, इतनी मेहनत मत कर, पर कोई माने तब न ? बेटा चेतन ! इस जिद्दी लड़की को तू ही समझा, मैं तो हार गयी (रचना के सिर पर हाथ फेरती है)।

रचना : मैं ठीक हूँ, माँ !

शान्ति : हाँ ठीक है, देख तो कैसा पीला-फक्क मुँह पड़ गया है। (चेतन से) तू भी, बेटा चेतन ! अब कई-कई दिन नहीं आता। तू तो मेरा शरण ही है। मैंने शरण से तुझे अलग मान कर कभी नहीं देखा।

चेतन : जानता हूँ, माँ ! सब जानता हूँ, पर कल पिता जी की एकाएक तबियत खराब हो गयी, इसलिए नहीं आ पाया। बस कल ही तो नहीं आया। पिता जी को जिस दर्द से कल तिलमिलाते मैंने देखा था, उसी दर्द को मैंने रचना के प्राणों में उभरते देखा है। डाक्टर को दिखाना होगा, माँ !

शान्ति : डाक्टर महलों के लिए होते हैं, बेटा ! झोंपड़ियों के लिए नहीं।

चेतन : झोंपड़ियाँ···महल···सब जग के छलावे मात्र हैं, माँ ! झोंपड़ियों में क्या महलोंवाली चेतना नहीं रहती ? दर्द क्या केवल दरिद्रता के भाग्य की ही कहानी मात्र है ? लगता है आज भी घर में चूल्हा नहीं जला है। केवल एक कप

चाय पर जीवन का भार ढोने को आप लोग तत्पर हैं। माँ ! यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

शान्ति : आज तो सोमवार है, बेटा ! स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री जी के आदेशानुसार आज के दिन तो एक समय ही भोजन करना था। वही हम लोगों ने किया।

चेतन : या यों कहो कि शाम का इन्तजाम ही नहीं है। (कनस्तर से मक्का जमीन पर लौटते हुए) कल जब यह मक्का पिसेगी, तब भोजन की व्यवस्था होगी।

सबके मुखों पर एक फीकी मुस्कान छा जाती है। पृष्ठ-भूमि से एक शोर उभरता है। मिले-जुले स्वरों की अस्पष्ट आवाज तीव्र होती जाती है।

चेतन : यह कैसा शोर है ?

शान्ति : राशन की दूकान पर आटा लेने के लिए लोगों की भीड़ जमा हो गयी है। एजेन्सीवाला कहता है, रात हो गयी कल मिलेगा। लोग कहते हैं आज ही लेंगे। आज नहीं लेंगे तो कल क्या खायेंगे ? दो मुट्ठी आटे के लिए लड़ती हुई जिन्दा लाशों का नाच देखना चाहते हो, तो देख आओ, बेटा !

चेतन : जा रहा हूँ माँ ! मुर्दों को अट्टहास करते जरूर देखूँगा। ग़मों की छायाएँ वहाँ हँसती हैं, दर्द के समुन्दर वहाँ लहराते हैं। बेचारा इन्सान आज कितनी लाचारियों में बँधा सिसकता है, पर उसकी आवाजें कैद हैं बन्द दायरों में।

चेतन जाता है, प्रनीता का प्रवेश।

प्रनीता : चेतन दा आये थे, माँ ! अभी क्यों लौट गये ?

शान्ति : राशन की दूकान पर लड़ते आदमियों की, आदमी नहीं कुत्तों की बारात—देखने गया है। कैसा भोला है चेतन ?

प्रनीता : विचारों की संकुचितता में बँधे रहनेवाले नहीं हैं चेतन दा, माँ ! वे कवि होते हुए भी यथार्थ की विषमताओं से परिचित हैं। मैं कितनी बार कह चुकी हूँ कि रचना के लिए चेतन से सुन्दर वर नहीं मिल सकता, माँ ! पर तुम मानो तभी न !

शान्ति चुप रहती हैं।

रचना : भाभी······

शान्ति का प्रस्थान।

प्रनीता : हाँ रचना ! हर लड़की का ब्याह होता है, हर लड़की अपने भविष्य के सपने सँजोती है। मैं जानती हूँ, तुमने भी सपने

सँजोये हैं। मैं तुम्हारे उस स्वप्न-देवता को भी जानती हूँ, जिसकी मूर्ति तुम्हारे मन में न जाने कब से अंकित है।

रचना : सपने तो तुमने भी सँजोये थे, भाभी ! माँ ने भी सँजोये थे और तुम्हारे और माँ के सपनों का यह देवता··· (दीवार से फ़ोटो उतारकर) कहाँ है तुम्हें मालूम है ?

प्रनीता : (थक कर कुर्सी का सहारा लेती है) इन्सान हार रहा है, रचना ! आज की विषम परिस्थितियों से। मैं भी हार गयी हूँ। मेरे ब्याह के लिए सजाये गये वन्दनवारों की कहानी मत दुहराओ, रचना ! मत दुहराओ।

पृष्ठभूमि में ब्याह के गीतों का स्वर उभरकर तीव्र से तीव्रतर होता है, तीव्रतम, फिर धीमा होता जाता है। किसी के ज़ोर से अट्टहास करने की हल्की-सी आवाज़ सुनाई देती है।

रचना : सुनीता का ब्याह है न कल, भाभी ! उसी के गीत गाये जा रहे हैं।

अट्टहास की ध्वनि ज़ोर पकड़ती है।

प्रनीता : माँ को फिर पागलपन का दौरा उठ आया है, रचना ! मैं जाती हूँ। (प्रनीता तीव्रता से जाती है)

रचना : परिवार का हर आदमी बीमार है। ये उभरते हुए साये··· अन्धकार के वीरान में अँगड़ाइयाँ लेता एक तूफ़ान······ मन में भावनाओं के बनते-बिगड़ते ज्वार-भाटे। भाभी कहती हैं रचना अधूरी रह जायेगी चेतन के बिना। जीवन का यह अधूरापन···, पर आकाश में घुमड़ते रीते मेघों को पानी कौन देगा, कौन पानी देगा ?···(सिसकियाँ फूटती हैं)।

पृष्ठभूमि से प्रनीता की आवाज़—"होश में आओ मेरी भोली माँ, होश में आओ। देखो, हमारे घर में भी सुनीता के ब्याह की तरह रचना का ब्याह होगा।" शान्ति का अट्टहास गूँजता है सूने वातावरण में।

चेतन का प्रवेश।

चेतन : क्यों रो रही हो, रचना ? आँखों के ये मोती यों ही बिखेरने के लिए क्या आँखों में भर दिये जाते हैं ? मैं तुम्हारे इन मोतियों को बीन लूँगा, रचना ! (आँचल फैलाता है)।

रचना : (हँसने की चेष्टा करते हुए) आज तुम पर फिर तुम्हारा कवि हावी हो रहा है, चेतन ! कैसी पागलपन की बातें करते हो !

पृष्ठभूमि से ढोलक पर सुनीता के ब्याह के गीत उभरते हैं।

रचना : (कातर-दृष्टि से चेतन की ओर देखती है) —आज पड़ोस के सेठ जी की लड़की सुनीता का ब्याह है, चेतन ! उसी के मंगल-गीत कानों में सुनायी पड़ रहे हैं।

चेतन : (रचना के पास पड़े हुए मक्का के दानों को उछालते हुए) ये मक्का के दाने……देश की निरीह जनता के जीवन का सहारा बन गये हैं, रचना ! अरे हां, तुम्हें पता है आज सेठ चरनसिंह के यहां क्या हुआ ?

रचना : (उत्सुकता से) क्या हुआ, चेतन ?

चेतन : गेहूँ की खत्तियों पर छापा मार कर गेहूँ निकाला गया है। सेठ चरनसिंह जेलखाने की हवा खा रहे हैं।

रचना : हां चेतन ! पिछले वर्ष ही तो इन सेठ जी के यहां सोने के सैकड़ों बार पकड़े गये थे।

चेतन : हां रचना ! उन्ही सेठ जी के सुपुत्र महोदय तुम्हारी सुनीता देवी के यहां ब्याहने आ रहे हैं।

रचना : (आश्चर्य से) सच……सुनीता चोरों के घर जायेगी ?

प्रनीता का प्रवेश।

चेतन : चोरों की लड़की चोरों के यहां चली जाये तो……

प्रनीता : हर्ज क्या है और एक भोली-भाली कवि-स्वभाव की लड़की को यदि कवि के हाथों में सौंप दिया जाये तो……

चेतन और रचना दोनों प्रनीता की ओर देखते हैं।

रचना : तो……तो ठीक नहीं रहेगा, भाभी ! (चेतन लड़खड़ाता है। प्रनीता उसे सहारा देती है और घर के अन्दर ले जाती है।)

रचना : लगता है मेरे अन्तर के किसी दुर्बल कक्ष के आज द्वार खुल गये हैं। उफ़, यह कौन कह रहा है—"चेतन के बिना रचना अधूरी है…रचना अधूरी है।" (रोती है) चेतन ! तुम कदाचित् सोचते हो, रचना अपराजिता है, पर नहीं, रचना तो बार-बार हारी है, तुमसे बार-बार हारी है।

पृष्ठभूमि से उभरती आवाजें।

पहली आवाज : चेतन से ब्याह कर ले रचना ! इसी में तेरी खुशी है—तेरे परिवार की खुशी है—चेतन की खुशी है। तू चेतन से प्यार करती है। इस सत्य को मत झुठला।

दूसरी आवाज : तू ब्याह रचायेगी रचना, चेतन से ? भोली प्रनीता—जिसका पति शरण इंग्लैण्ड जाकर दूसरा ब्याह रचाकर अपने

दायित्वों को भूल गया—उसका क्या होगा ? परिवार के प्रति क्या प्रनीता का ही कर्त्तव्य है, तेरा नहीं ?

ली आवाज़ : तुझे प्रनीता से क्या मतलब ? तू अपने भविष्य की ओर निहार । तेरा जीवन, तेरे सँजोये स्वप्न···तभी सँवर सकते है, जब चेतन से तू ब्याह करेगी । आदर्शों से मुख मोड़ ले।

री आवाज : रचना ! आदर्शों की दुनिया में अपनी जिन्दगी को गुमराह मत कर ।

पृष्ठभूमि से माँ का उभरता हुआ अट्टहास···मन्थन, नन्दा, प्रनीता, चेतन के मिले-जुले स्वर ।

रचना : ये कैसी आवाज़ें हैं ? (सिर पकड़ लेती है) मैं क्या करूँ, चेतन ? मुझे राह दिखाओ । मेरा मन भावनाओं के भँवर-जाल में भटक रहा है । मेरी पागल माँ, प्रनीता भाभी··· मन्थन···नन्दा···(शरण के चित्र को उतार कर देखती है फिर फेंक देती है) । तुम शरण ! मेरे भाई ! तुम्हारा यह चित्र मन को छलनेवाली प्रवंचना ! एक ढोंग !

प्रनीता का प्रवेश । चित्र के टुकड़ों को बटोरती है ।

प्रनीता : यह क्या किया, रचना ? मेरी आकांक्षाओं को इतनी निर्ममता से क्यों नष्ट कर दिया ! मेरे जीवन का यह विध्वंस क्यों किया···क्या मेरी इतनी भी प्रसन्नता तुम्हें······ ?

रचना : (हतप्रभ-सी) इस चित्र के सहारे ही तुम परिवार के दायित्वों के बन्धन में बँधी थी, भाभी ! अगर शरण भय्या दूसरा ब्याह कर सकते हैं, तो तुम दूसरा ब्याह क्यों नहीं कर सकती ? तुम आज से मुक्त हो, भाभी ! मुक्त हो ।

प्रनीता : ये परिवार के दायित्व ही तो मेरे मन का बन्धन बन गये हैं, रचना ! इन्हें कैसे तोड़ूँ ? तुम स्त्री होकर भी स्त्री के मन की पीड़ा नहीं समझ पातीं । पीड़ा से तिलमिलाते हुए प्राणों को अगर शान्ति मिल सकती है, तो इन दायित्वों की पूर्ति में ही । तुम इन्हें मेरे लिए भार मत मानो । माँ में मुझे उन्हीं का रूप दीखता है । तुम, मन्थन, नन्दा मेरे लिए, मेरे लिए क्या हो रचना, कैसे तुम्हें समझाऊँ ?

रचना : (हतप्रभ हो जाती है) मुझे क्षमा करो, भाभी ! मैं भ्रम में थी ।

फिर पृष्ठ-भूमि से शान्ति का अट्टहास उभरता है ।

प्रनीता : (हँसते हुए) बस अब माफी माँगने लगीं । खैर चलो, जो हो गया, हो जाने दो । हाँ, माँ का जीवन बचा लो, रचना !

चेतन से ब्याह कर लो। तुम्हारी भाभी के सूने जीवन में भी रंगीन बहारें आ जायेंगी। हाँ कर दो, रचना ! मेरे लिए—माँ के लिए—चेतन के लिए। (रचना के मुख पर कठोर भावाकृतियाँ उभरती हैं, मिटती हैं।)

चेतन : (प्रवेश करके) पाषाण से तुम कहना चाहती हो कि वह दर्द से पिघल जाय। कठोरता से कहना चाहती हो कि वह द्रवीभूत हो जाय, भाभी ! उल्टी गंगा बहाने का प्रयास मत करो।

प्रनीता : पाषाणों को पिघलते मैंने देखा है, चेतन दा ! कठोरता की आँखों में लहराते करुणा के सागर को भी मैंने देखा है, तुम भी देखोगे। आओ, चलो माँ के पास।

चेतन और प्रनीता का प्रस्थान, नन्दा का प्रवेश।

नन्दा : ओहो रचना दीदी ! आज तो तुम बड़ी उदास-उदास सी लग रही हो। क्या कोई नयी बात है ?

रचना : पुरानी जिन्दगी में नया फ़साना ? पतझर में बहार…… ? ये सब हमारे लिए नहीं हैं, नन्दा !

नन्दा : तुम तो हमेशा दुःख, पीड़ा, दर्द की बात करती हो, दीदी ! मुझे तो हँसना अच्छा लगता है। डालों पर फुदकती चिड़ियों को जब मैं देखती हूँ, दीदी ! तो सच कहती हूँ, मेरा मन पुलक उठता है। हाँ दीदी ! तुम्हें मालूम है, मैं इस बार भी कॉलिज की कई-कई प्रतियोगिताओं में प्रथम आयी हूँ…।

रचना : (नन्दा को आलिंगन में बाँधकर) तू मेरी बड़ी ही प्यारी बहन है, नन्दा ! मेरा कहना मानेगी ना ?

नन्दा : तुम्हारा कहना मैंने कब नहीं माना, दीदी ! तुम्हारा आदेश तो मेरे लिए सदैव माननीय रहा है और रहेगा।

रचना : हाँ नन्दा ! ऐसी ही आशा मुझे तुझसे है। हाँ, ज़रा चेतन को भेज दे मेरे पास। भाभी के कमरे में हैं। लेकिन भाभी को मत आने देना, वहीं बातों में लगा लेना।

नन्दा : समझ गयी, दीदी ! समझ गयी, अब जल्दी ही मेरा मुँह मीठा कराओगी ना !

रचना : हट पगली……

नन्दा का प्रस्थान।

रचना कपड़ों को समेट कर मक्का साफ़ करती है।

चेतन का कविता की कोई पंक्ति गुनगुनाते प्रवेश।

चेतन : कहिये रचना जी ! आज कैसे मुझ नाचीज़ की आवश्यकता

पड़ गयी ?

रचना : व्यंग्य मत करो, चेतन ! मेरे मन की गहराइयों में भी कभी तुमने उतरने का प्रयास किया ?

चेतन : गहराइयों में तो कोई उतरे तब, जब अन्तर के द्वार खुलें...... ।

रचना : नहीं चेतन ! द्वार तो अपने आप खुल जाता है और तुम यह भी नहीं जानते... ?

चेतन : हाँ हाँ कहो, चुप क्यों हो गयी ?

रचना : विवशताओं ने मुझे जड़ बना दिया है, चेतन ! एक कहना मानोगे ? केवल एक बार ।

चेतन : तुम कहो रचना, और चेतन न माने ! वचन देता हूँ तुम जो कहोगी, रचना ! मैं मानूँगा...मानूँगा...मानूँगा... ।

रचना : (टूटती हुई-सी) तुम्हें नन्दा से ब्याह करना है, चेतन ! मेरी छोटी बहन से ।

चेतन : (चौंक पड़ता है) यह क्या, रचना !

रचना : हाँ चेतन ! मेरे लिए नन्दा से ब्याह कर लो । परिवार की दूसरी बड़ी होती हुई लड़की, पहली बड़ी लड़की से भी भयंकर समस्या बन जाती है । मेरे लिए, मेरे परिवार को डूबने से बचा लो, चेतन ! हाँ कह दो मेरे लिए केवल एक बार । (चेतन चुप है) ।

अन्दर से मन्यन, प्रनीता और नन्दा का प्रवेश । पृष्ठ-भूमि से सुनीता के ब्याह के गीत उभरते हैं ।

प्रनीता : मैं कह रही थी न, मान जाओ । रचना ! मान जाओ, आखिर मेरी बात मान ही ली तुमने ?

रचना : (कांपती-सी) हाँ भाभी ! तुमसे बाहर भी कैसे जा सकती है तुम्हारी रचना ! भाभी, रोली तो ले आओ ।

प्रनीता प्रसन्न भाव से रोली लेने जाती है । रचना आगे बढ़कर चेतन के कांपते हुए हाथों में रोली का पात्र थमाती है । चेतन कांपते हाथों से नन्दा की मांग भर देता है । ब्याह के गीत पृष्ठ-भूमि से तीव्र होकर मन्द होते जाते हैं ।

प्रनीता : (चौंक पड़ती है)—रचना !......

मन्यन व नन्दा के नेत्रों से आंसू झरते हैं ।

रचना : हाँ भाभी ! आज हमारे परिवार में भी ब्याह का शुभ दिन आया है । कितने तूफानों को मैंने झेला ? आज मेरा

अन्तर कितना शान्त है ? कोई हलचल नहीं । चलो माँ से आशीर्वाद लेने चलें ।

सब आँखों से आँसू पोंछते हैं ।

रचना : अरे, खुशी के अवसर पर यह रोने की बात क्यों ? नहीं··· नहीं··· ।

चेतन पथराई दृष्टि से रचना को देखता रहता है । नन्दा सिसकती है । पृष्ठ-भूमि से किसी भिखारी का दर्द से भीगा स्वर उभरता है—

इस चमन को मत सँवारो
दर्द से गुलजार है
जिन्दगी की हर गली को
आँसुओं से प्यार है
गम भरा आकाश
धरती स्वप्न में डूबी हुई
इस विजन को मत सँवारो
दर्द का पतझार है ।

पर्दा गिरता है ।



४

पर्वत से गिरा एक मन

पात्र

गोमती	माँ
अमित	पुत्र
सुनीता	बहू
कान्ता	बहन
चन्दन	अमित का (डॉक्टर) मित्र
चन्दू	नौकर
डाक्टर सहाय	फ़ैमिली डॉक्टर

[सायंकाल ५ बजे।

अमित के घर का एक कमरा। सामने की दीवार में बीच में एक चित्र है। इधर-उधर अन्दर के कमरों में जाने के लिए दो द्वार हैं, जिन पर हरे रंग के पर्दे पड़े हैं। बीच में दायीं ओर एक बैड कवर से ढकी चौकी बिछी है और उसके पास ही एक सोफ़ा। सोफ़े के आगे बीच में लम्बी मेज़ है जिस पर एक फूलदान रक्खा हुआ है, जिसमें प्लास्टिक के फूलों का गुच्छा है। पास में ही एक एलबम भी है। सोफ़े के बायीं ओर रैक में कुछ किताबें लगी हुई हैं।

पर्दा खुलता है। कान्ता बच्चे की शर्ट में चौकी पर बैठी बटन टाँक रही है और गोमती के हाथ में चाकू है, उसके पास में सब्जी की टोकरी। वह सोफ़े के बराबरवाली कुर्सी पर बैठी हुई सब्जी काट रही है।]

कान्ता : आज भी भाभी ने सुबह से झाड़ू जो उठायी है, रखने का नाम ही नहीं लेती, माँ ! चन्दू दो बार सफ़ाई कर चुका है घर की, पर पता नहीं भाभी को क्या सनक सवार हो जाती है कभी-कभी।

गोमती : मेरी तो खुद कुछ समझ में नहीं आता। अक्ल पर पाला पड़ गया है जैसे। उसका बस चले, तो सड़क पर भी झाड़ू लगा दे। वो तो बँधी हुई है—बहू जो है।

कान्ता : तुम्हें याद होगा, माँ ! इस बार हम जब मुरादाबाद से मामा जी के यहाँ से लौट रहे थे; तो बस में चढ़ते ही भाभी ने नाक चढ़ायी थी। "हाय कितनी गन्दगी है" भाभी ने कहा था।

गोमती : (हँसकर) और तूने भी तो उसे खूब अच्छा उत्तर दिया था।

"तुम्हारा बस चले तो, भाभी ! तुम यहाँ भी झाड़ू लेकर सफ़ाई करने लगो।" यही कहा था न ?

कान्ता : हाँ माँ, और सुनो भाभी रूठ गयी थी।

गोमती : देखती हूँ बेचारे अमित की तो ज़िन्दगी ही तबाह हो गयी। क्या ऐसा सोचा था कभी ? अच्छी खासी लड़की, पढ़ी-लिखी, सुन्दर। किसको पता था, बेटी ! यह सुन्दर मूरत माटी की है—केवल माटी की ?

कान्ता : तब तो भाभी के घरवालों ने सब कुछ छिपा लिया था, जैसे अपने सिर की बला वे दूसरों के सिर मढ़कर मुक्त हो गये। हिन्दुस्तान के लोगों की यह बहुत गन्दी आदत होती है, माँ ! यह तो खुल्लम-खुल्ला धोखा हुआ।

गोमती : उनका क्या बिगड़ा !... पर हम तो कहीं के न रहे।... (कुछ सोचकर) जवान लड़की माँ-बाप के सिर का बोझ होती है, बेटी ! ...और हर आदमी अपने सिर के इस बोझे को उतारकर जल्दी-से-जल्दी फेंक देना चाहता है।

कान्ता : (सोचकर) तब तो तुम भी, माँ ! मुझे फेंक देने की बात सोचती होंगी...जवान लड़की माँ-बाप के सिर का बोझ होती है...आदमी उस बोझ को उठाने में असमर्थ हो जाता है। बेचारा बोझ... बेचारी...लड़की... !

गोमती : पगली कहीं की ! कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाती है। सचमुच पढ़नेवाली हर लड़की का दिमाग़ ख़राब हो जाता है, मैंने तो देख लिया।

तभी पीछे से कुछ शोर उभरता है, किसी बच्चे की ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ आती है, बच्चा सुबकियाँ भरता है। चन्दू का प्रवेश।

चन्दू : माँ जी ! देखिये, बहू जी ने फिर डब्बू को नहला दिया है। सड़क से खेलकर आया था। उसके हाथ-पाँव गन्दे थे और बहू जी ने उसे हौज़ में खड़ा कर दिया। बाप रे बाप ! इस सर्दी में छोटा बच्चा रोये नहीं तो क्या करे ?

गोमती : (खड़े होकर) हाय राम ! यह तो माँ नहीं है। पता नहीं कौन कुलच्छनी मेरे घर में आ गयी है। बच्चे को मार ही डालेगी।

अमित का प्रवेश। मुख पर परेशानियाँ झलकती हैं। पैंट पर ऊनी फुलस्लीव्ज़ का पुलोवर पहने है।

अमित : मैंने तुमसे पचास बार कहा, अम्मा ! तुम डब्बू को सुनीता

के पास मत छोड़ा करो, पर तुम लोगों को बच्चे से कोई प्यार हो तब न।

कान्ता का प्रस्थान।

गोमती : कैसी बातें करता है रे अमित ! मुझे बच्चे से प्यार नहीं ? तू नहीं जानता, बेटे ! मूल से ब्याज प्यारा होता है। तू जानेगा भी कैसे ?...

अमित : बस माँ ! अब मुझसे इस घर में नहीं रहा जाता... कितना अभागा होता है कोई-कोई इन्सान दुनिया में, माँ ! बदनसीबियों के काले सायों से घिरा-घिरा इन्सान...पहले मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था...पर अब तो स्वयं मैं ही कितना बदनसीब हूँ, मैं...कितना...बदनसीब... ! मेरे लिए घर श्मशान है...बाहर के प्रलोभनों में मेरा मन बँध नहीं पाता। क्या करूँ मैं ? (माथा पकड़कर बैठ जाता है)

गोमती : घबरा मत, बेटे ! भगवान् सब भला करेंगे।

अमित : भगवान्...भगवान्...मुझे भगवान् के अस्तित्व पर अब सन्देह होने लगा है, माँ ! इन्सान अपनी जीत-हारों का सेहरा भगवान् के सिर पर रखता रहे और भगवान् बहरा बना उन्हें स्वीकार करता रहे। बस यही न ? भगवान् कोई नहीं है, कोई नहीं है, माँ ! सब मनुष्य के मस्तिष्क की बाँझ कल्पनाएँ हैं।

तभी चन्दू का प्रवेश।

चन्दू : चन्दन बाबू आये हैं, अमित बाबू !

चन्दू का प्रस्थान।

चन्दन का प्रवेश। अमित चन्दन को देखकर उससे लिपट जाता है। चन्दन गोमती के पाँव छूता है। गोमती आशीर्वाद देती है।

गोमती : कब आया रे, लखनऊ से ? अबकी बार तो बहुत दिन लगा दिये।

चन्दन : हाँ माँ ! फाइनल था न। बहुत सारे काम पूरे करने होते हैं आखिरी साल में।

गोमती : तो मेरा चन्दन बेटा अब डाक्टर हो गया ?

चन्दन : तुम्हारी कृपा से सब काम पूरा हो गया, माँ !

गोमती : अच्छा तुम लोग बैठकर बातें करो। मैं चाय बनाती हूँ जाकर।

गोमती का प्रस्थान।

चन्दन : (अमित से) इतने दिन बाद मिले, और तू मुँह लटकाये बैठा है। क्या बात है रे अमित ?

अमित : मैं बहुत परेशान हूँ, चन्दन ! सुनी···

चन्दन : क्या हुआ सुनी भाभी को, अमित ! जल्दी बता क्या हुआ है ?

अमित : यही तो पता नहीं चलता। छः महीने बीत गये, मैं तो इलाज कराते-कराते थक गया। मुसीबत तो यह है कि उसकी बीमारी के बारे में सारे डाक्टर भी एकमत नहीं हैं। कोई कहता है ऐलोपैथिक ट्रीटमेण्ट करो, तो कोई कहता है होम्योपैथिक। मेरी तो बुद्धि भ्रष्ट हो रही है, चन्दन !

चन्दन : सुनीता भाभी इतनी बीमार है, और तूने मुझे खबर भी नहीं दी। इतना गैर कब तक समझते रहोगे तुम मुझे, अमित ! तुमसे यह नहीं हो सका कि लखनऊ लेकर चले आते ? वहाँ मेडिकल कालेज के सभी तो अच्छे डाक्टर मेरे परिचित है। पर तुम ठहरे बनिये के बेटे, अमित ! तुम तो एक दिन भी कहीं नहीं खिसक सकते, रोजगार जो ठप्प हो जायगा तुम्हारा।

अमित : ऐसा न कहो, चन्दन, ऐसा न कहो। जब बुरे दिन आते हैं तो मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। कहीं भी तो कोई आशा की किरण नहीं दिखती···सुनी के साथ बिताये वे दिन मैं भूल नहीं पाता, चन्दन, भूल नहीं पाता। जिस सुनी के खूबसूरत चेहरे पर गुलाबों की ताज़गी थी, जिसकी निगाहों की मासूमियत पर सब फ़िदा थे, वह सुनी अब कहाँ है, चन्दन ? मुझे लगता है कि मेरी बगिया की चहकती बुलबुल अब शापभ्रष्टा हो गयी है। चन्दन का वह पौधा अब नहीं महकता, जिसे मैंने अपने घर की खुशबू मान लिया था।

चन्दन : सुनी भाभी की बीमारी ने तुम्हें शायर बना दिया, मेरे दोस्त ! इतने भावुक मत बनो। सभी बीमारियाँ लाइलाज नहीं हुआ करतीं। सुनी भाभी जल्दी ठीक हो जायेंगी। यह मेरे दिल की आवाज है।

चन्दू का प्रवेश। हाथ में चाय की ट्रे है। ट्रे को मेज पर रखकर प्यालों में ढाल-ढालकर चन्दन और अमित को देता है। इसके बाद बिस्कुट की प्लेट

दोनों के आगे करता है। दोनों एक-एक बिस्कुट उठाकर खाने लगते हैं।

चन्दू : माँ जी ने बहूरानी से कहा कि चन्दन बाबू आये हैं, जाओ मिल आओ···पर बहू जी ने तो कान्ता बीबी के कमरे में आकर दरवाजा ही बन्द कर लिया। तब से बराबर माँ जी खुलवा रही है, पर वे तो हिलती ही नहीं।

अमित : देखो, चन्दन ! तुम्हीं देखो। ये भला कहीं अच्छी हरकतें हैं ! कभी-कभी तो सुनी को इन आदतों पर क्रोध आता है। भला कमरे में गयी थी तो दरवाजा बन्द न करती !

चन्दन : अच्छा चलो, हम चलें वहाँ।

चन्दू का प्रस्थान, कान्ता का प्रवेश।

कान्ता : (चन्दन से) नमस्ते चन्दन भय्या ! तुम अच्छे समय पर आये। हम सब तो तुम्हें याद ही कर रहे थे।

चन्दन : हलो कान्ता ! कहो कैसी हो ? अब तो एम० ए० पूरा हो गया होगा ? महिला कॉलिज में हो न ?

अमित : इस सीमेस्टर से इसने यूनिवर्सिटी में एडमिशन ले लिया है।

कान्ता : पर अब पता चलता है कि अपना कॉलिज कितना प्यारा होता है, भय्या ! उसकी चारदीवारियों से भी एक मोह-सा हो जाता है।

अमित : अच्छा, तू दीवारों को भी प्यार करती है ?···

चन्दन : सचमुच दीवारें ही नहीं ईंटें भी प्यारी होती हैं, मिट्टी भी प्यारी होती है—अपने स्कूल की—अपने कॉलिज की—अपने घर की—अपनी गलियों की। मेरे एक दोस्त हैं—रतन। मुझ-से दो वर्ष सीनियर थे। अब कनाडा में हैं। वहीं सैटिल हो गये हैं। अबकी बार उन्होंने अपने एक पत्र में मुझे लिखा—"अपने देश की मुझे बहुत याद आती है, चन्दन ! वह खुला आकाश, मेरे मोहल्ले की वे गलियाँ—वे चौराहे—वे घर—सब मुझे भरमाते हैं। हमारी गली के चौराहे का समाचार लिखना, क्या अब भी वहाँ साँझ को रशीद गद्दी की गायें लावारिस-सी जमा हो जाती हैं ?" (हँसता है)

कान्ता : इन्सान कहीं भी रहे, भय्या ! अपनों की याद आती ही है। सच कहूँ, तुम मानो या ना मानो, न जाने कितनी बार आँखें भरी हैं और ढल गयी है अपने कॉलिज की याद में। फ्रैन्ड्स का वह सरकिल भी तो अब नहीं रहा। लता ने कॉलिज छोड़ दिया तो फिर मैं लता के बिना कैसे पढ़ती वहाँ?

चन्दन : लता ने कॉलिज क्यों छोड़ दिया ? तुम्हारे ही तो साथ थी।

कान्ता : लता की शादी हो गयी, भय्या !

चन्दन : लता की शादी हो गयी ? (सुनकर आहत-सा हो जाता है)।

कान्ता : हाँ भय्या ! उसके पति इरीगेशन में इंजीनियर हैं।

अमित : लता की शादी से तुम्हें लगा होगा तुम्हारे सपने आकाश से धरती पर आ गिरे हैं, चन्दन ! यही न ? मैं भी सोच रहा था, पर तुम्हें लिखता भी कैसे ? एक ये कान्ता है, इसके पेट में कोई बात नही पचती।

चन्दन : अच्छा ही किया कान्ता ने तो। क्या सच को बहुत दिनों तक झुठलाया जा सकता है ? एक-न-एक दिन तो पता चलता ही।

अमित : वे दिन बालू के घरौंदे थे, चन्दन ! ढह गये। नये घरौंदे बनाने ही पड़ते है।

कान्ता हतप्रभ-सी दोनों की ओर देखती है।

कान्ता : मुझे माफ़ करो, चन्दन भय्या ? मुझे तुम्हारे इस रहस्य का कुछ पता नहीं था। लता ने कभी संकेत भी नहीं किया था, पर लता मजबूर थी।

चन्दन : मजबूरियाँ इन्सान को बाँध ही लेती हैं। अच्छा छोड़ो यह प्रसंग। समझ लो कोई एक क्षण था, वह भी बीत गया कभी न लौट आने के लिए। हाँ, हाँ, सुनी भाभी के पास चलना है न, अमित ?

कान्ता : हाँ, भय्या ! सुनी भाभी तो दरवाजा ही नहीं खोलतीं। मैंने कितनी बार द्वार खटखटाया, पर वे तो जैसे पाषाणी बन गयी हैं। सुनती ही नहीं।

गोमती का प्रवेश।

गोमती : मैंने भी कई बार कोशिश कर ली, पर वह तो हिल कर ही नहीं देती। अँधेरा भी हो गया है, अब तो दोनों वक्त मिल गये हैं।

अमित : (व्यग्र होकर) कहीं कुछ अनहोनी न हो जाये।

चन्दन : चलो ज़रा, डाक्टर साहब के पास चलें।

सबका प्रस्थान ! थोड़ी देर के लिए रंगमंच खाली रहता है। अन्दर से डब्बू के रोने की आवाज आती है। पर्दे के पीछे से कुछ मिले-जुले स्वर उभरते हैं।

गोमती : कान्ता ! ओ री कान्ता ! देखियो ज़रा डब्बू रो रहा है।

मैं तेरे पिताजी के लिए दो रोटी तवे पर डाल दूँ, तू उसे कहानी सुनाकर सुला दे। इसकी नींद का समय हो गया है, और हाँ, सुलाने से पहले दूध भी ले जा उसका। सोने के बाद दूध नहीं पीकर देता।

कान्ता : दूध दे दिया है अम्मा, दब्बू को। कहानी नहीं सुनता। कहता है, मम्मी के पास जाऊँगा।

सोमती : मम्मी के पास जाऊँगा, मम्मी के पास जाऊँगा···माँ तो पूरी राक्षसी है···मारती है जल्लादों की तरह।···दिन देखे न रात देखे···ठण्डे पानी में डुबो देती है आकर।

कुछ देर तक शान्ति रहती है रंगमंच पर। अन्धकार और बढ़ने लगता है। सुनी का प्रवेश। वह स्विच ऑन करती है। कमरे की अस्त-व्यस्त अवस्था को देखती है। चाय के बर्तनों की ओर जाती है।

सुनी : उफ़ चाय के ये बर्तन···कितनी घिनौनी झिल्ली-सी तैर रही है इन प्यालों में! लगता है जिन्दगी पर भी गन्दगी की ये घिनौनी झिल्लियाँ जम गयी हैं—जमती जा रही हैं··· गन्दगी की झिल्लियों से भरी ये···जिन्दगी···उफ़··· कितनी तीखी बदबू है!···लाख बार कहा चन्दू से कि प्याले धोकर रख दो पर क़ौन सुनता है? यहाँ का तो हर आदमी बादशाह है···**(चाय के प्याले ट्रे में रखती है, उठाकर अन्दर ले जाती है···फिर एक मिनट बाद प्रवेश···। एक हाथ में झाड़ू है दूसरे में झाड़न।)**

कितनी धूल है दरवाजों पर! जैसे वर्षों हो गये झड़े हुए। **(झाड़ती है। रैक में रखी हुई किताबों को उठाकर देखती है)** यहाँ भी धूल···वहाँ भी धूल—सब जगह धूल— **(एक किताब उठाकर पढ़ने लगती है)** यह डायरी मेरे छात्र-जीवन की है। कितने मादक क्षण इसमें भरे हुए हैं···कितनी सारी कविताएँ हैं? क्या होगा इनका, क्या होगा? मेरी ज़िन्दगी के ज़िन्दे कब्रगाह हैं ये। नहीं···नहीं···इन्हें मिटा दूँगी··· **(फाड़ती है एक पृष्ठ, पर हाँफ जाती है, फिर मेज़पोश उठाकर झाड़ती है, फिर बिछा देती है। पलंग से बेड कवर उठाकर झाड़ती है, फिर बिछा देती है। झाड़ू लगाने लगती है।)** ···लेकिन झाड़ू तो रात को नहीं लगती। अरे, अम्माजी न देख लें। **(झाड़ू को सोफ़े के नीचे छिपा देती है, फिर सोफ़े पर बैठ जाती है। सिर पकड़ लेती है।)**

मुझे सब कहते हैं मैं पागल हो गयी हूँ। क्या···सचमुच मैं पागल हो गयी हूँ ?···हमारे घर के पास ही जो रम्मो भाभी रहती थीं, वे थीं पागल तो—रात को सोयें, दिन को चिल्लायें। हँसती ऐसे थी जैसे······(पागल की तरह हँसने का एक्टिंग करती है)।

(मेज़ पर रखे एलबम को उठाकर देखती है) ये मेरी शादी के चित्र हैं। (ध्यानमग्न होकर देखती है—एक-एक फ़ोटो पलटती है।) ये अमित खड़े हैं सेहरा बाँधे हुए··· पर नहीं, नहीं······अमित नहीं, अमित नहीं······ हाय ! फिर नाम ले लिया। (दरवाज़े की ओर भागती है) अम्माजी ने तो नहीं सुना, अगर सुन लिया तो···नहीं··· नहीं···अब अमित नहीं कहूँगी···अमित···अमित···नाम नहीं लूँगी।···एक दिन अमित को अमित ही तो कह दिया था···माँ जी के सामने···और तब माँजी ने कुलच्छनी कहा था।···सचमुच भारतीय लड़की पति का नाम नहीं लेती··· पर मैं क्या करूँ···याद ही नहीं रहता? (फिर फ़ोटो देखती है) यह मेरे हाथ में वरमाला है और मेरा यह दुलहन वेष (हँसती है) क्या कार्टून बनाया था मेरा !···और ये सब मेरी सहेलियाँ नीता, बीना, कली, अली, मंजरी, गरिमा ···और कुछ तो चेहरे पहचान में ही नहीं आते।···

धीरे-धीरे एलबम के और भी चित्र पलटती है।

ये डब्बू है ! डब्बू मेरा बेटा···माँ कहती है, "डब्बू को सुनी के पास न जाने दो···डब्बू को मार डालेगी।" अमित कहते हैं···नहीं, नहीं, ये कहते हैं—"डब्बू को सुनी के हाथों में मत दो।" और कान्ता से जब मैं डब्बू को माँगती हूँ तो वह···जैसे सुनकर भी अनसुनी कर देती है···सब मुझे पागल कहते हैं···सब···घर का नौकर चन्दू भी··· (सुबकने लगती है) मुझे माफ़ कर दो, मेरे बेटे ! मैं तुझे मारती हूँ···न ! मैं सच तुझे मारना नहीं चाहती······ पर क्या करूँ···?···मेरे अन्दर का शैतान इन सबके विरुद्ध बगावत कर देना चाहता है······ये सब पागल हैं······ मैं इनसे प्रतिशोध लेना चाहती हूँ। इन्होंने मेरे सपने तोड़े हैं······मेरे व्यक्तित्व को क़ैद किया है इन दीवारों की सीमा में। मुझे पागल कहते हैं···पागल कहीं के ! उफ़, मेरे बेटे और मेरे बीच में कितने ऊँचे व्यवधान खड़े कर दिये

है इन्होंने…मैं राक्षसी हूँ…जल्लाद हूँ…अपने बेटे के लिए, उफ़ ! (माथा पकड़ लेती है, एलबम वहीं रख देती है ।)

रेडियो ग्रॉन करती है, गीत उभरता है—

"ओ रे, ताल मिले नदी के जल में,
नदी मिले सागर में,
सागर मिले कौन से जल में,
कोई जाने ना, ओ रे !"

रेडियो बन्द कर देती है। गीत की पंक्ति धीरे-धीरे दोहराती है—

…ताल…मिले…नदी…के…जल…में,
…नदी…मिले…सागर…में……
…सागर…मिले…कौन…से…जल…में
………कोई…जाने…ना।………

कितना सुन्दर गीत है ! ग्रमित से कई बार कहा कि इस गीत का रिकॉर्ड ला दो ना ! पर उन्हें तो जैसे फ़ुरसत ही नहीं है—(गुनगुनाती है)—अरे हाँ, यूनिवर्सिटी में जब म्यूज़िक कान्फ्रेन्स हुई थी, तब लाइट म्युज़िक काम्पिटीशन में मुझे ही तो फ़र्स्ट प्राइज़ मिला था। लेकिन अब तो मेरी वीणा के तार ही टूट गये। मैं मोम की मूरत हूँ ; घर में लाकर सजा दी बस…देखे जाओ सब कोई…। जल-जल कर गलती रही…गलती रही (हँसती है)।

कितने स्वप्न सँजोए थे जीवन में ? सब टूट गये। वे टूटे सपने सुराही के टुकड़ों-से मेरे सामने पड़े हैं और मैं जोड़ना चाहती हूँ।… पगली सुनी ! भला कहीं टूटी सुराही भी जुड़ती है।

(लेट जाती है) ये मकड़ी के जालों से भरी कड़ियाँ, एलबम की ये बोलती गुमसुम तस्वीरें, ये दीवारें, ये फूलदान, ये मेज…ये कुर्सियाँ, मुझसे कहीं अधिक भाग्यशाली है। ग्रम्मा ने कहा था—(खड़ी हो जाती है) विदा के समय… क्या कहा था…उफ़, कितनी कमज़ोर याददाश्त हो गयी है मेरी…ग्रम्मा ने कहा था—उस घर की कुल-लक्ष्मी बनना बेटी,…कुल-लक्ष्मी…और मैं कुल-लक्ष्मी बनने की चाह लिये, आ गई यहाँ…सोचा था…छोटा-सा घर होगा। खूब साफ़-सुथरा…चमकता हुआ…पर…जिन्दगी यूँ ही बीत गई और हम किनारे पर खड़े-खड़े तमाशा ही देखते रह

गये···(दीवार में लगे कुछ चित्र हैं। सुनी उनके पास जाकर उन्हें देखने लगती है)।

···यह उजड़ते पतझर की तस्वीर है, मैंने कॉलिज में बनायी थी···प्रथम पुरस्कार मिला था···। पतझर उजड़ता है तो वसन्त सँवार देता है आकर···। मेरे पतझर को कौन सँवारेगा, कौन सँवारेगा अब? अब कुछ नहीं हो सकता··· कुछ नहीं हो सकता। इन बन्द दरवाजों से मेरी आवाजें टकराकर मुझी तक लौट आती है। इन दरवाजों में क़ैद आवाजों को खोल दो······खोल दो, मेरा दम घुट जायेगा, अमित! मैं मर जाऊँगी। (बैठ जाती है)

मैं इन बन्धनों को नहीं झेल सकूँगी, नहीं झेल सकूँगी (पलंग पर बिछे बैड कवर को उठाकर तहा देती है, मेज का मेजपोश उतार देती है) किसी आवरण की जरूरत नहीं किसी को भी। बैड कवर इसलिए बिछाया जाता है कि खाट की टूटी हुई सुतलियाँ न दिखायी दें···मेजपोश इसलिए इस्तेमाल होता है कि मेज की स्थान-स्थान पर उतरी हुई पॉलिश से उसका विकृत रूप न दीखे और आदमी भी अपने ऊपर न जाने कितने आवरण लपेटे रहता है, और दम्भ भरता है कि वह कितना उदार है···छलिया कहीं का···भेड़िये की खाल ओढ़े हुए ये इन्सान···न जीते हैं न जीने देते हैं··· (उत्तेजित हो जाती है) पिता नहीं रहे···अम्मा भी चली गयीं उस देश···भय्या इङ्गलेण्ड क्या गये वहीं के ही हो गये।···और रह गयी मैं अकेली···कितनी अकेली···कौन दर्द जानेगा··· ? (रोती है)।

···ये जीवन के विरोधाभास···अन्तर में निरन्तर चलते रहनेवाला यह द्वन्द्व···इसने मुझे कहीं का न छोड़ा। झूठे आभिजात्य को मैं कब तक ढो सकूँगी···सुनी मर···गयी, ······मर गयी···रह गयी है केवल उसकी लाश। पर्वत से गिरा एक मन···पर्वत से गिरा एक मन······(अन्दर भाग जाती है हाँफती हुई···)।

रंगमंच एक मिनट के लिए खाली रहता है, तभी डॉ० सहाय के साथ अमित और चन्दन का प्रवेश। तीनों थके से हैं, बैठ जाते है, अमित और चन्दन कुर्सियों पर और डॉक्टर साहब सोफ़े पर। एक क्षण तीनों चुप रहते हैं।

चन्दन : मैंने सब सुन लिया है अमित···भाभी की सारी बातें मैं सुन चुका हूँ। तुम लोग सचमुच भाभी को पागल बना डालोगे···

डॉ० सहाय : मुझे लगता है सुनीता जी को फिट्स आते हैं कभी-कभी और वे इस प्रकार के प्रलाप करती हैं।

चन्दन : नहीं डॉक्टर साहब ! सुनी भाभी बिल्कुल ठीक हैं। शादी के पहले उनके कुछ ख्वाब थे, जो यहाँ आकर पूरे नहीं हुए, और अवचेतन में जाकर ग्रन्थि बनकर उन्हें समय-समय पर प्रपीड़ित करते रहते हैं।

अमित : तब क्या करना होगा, चन्दन ?

चन्दन : कुछ नहीं, केवल प्यार दो उन्हें। कुछ व्यक्तित्व इतने शक्तिशाली होते हैं कि वे आसानी से अपने व्यक्तित्व का दूसरों में विलयन नहीं कर पाते, और तब वे फ्रस्ट्रेटेड-सा—अपने को—टूटा-टूटा-सा—अलग-अलग-सा महसूस करते हैं। ऐसे रोगियों की एकमात्र औषधि है प्यार। वे उपेक्षा नहीं झेल पाते···।

अमित : उपेक्षा कैसी ? कौन उपेक्षा करता है सुनी की ?

चन्दन : तुम···माँ···कान्ता, यहाँ तक कि घर का नौकर चन्दू··· भी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अंग्रेजी की पोस्ट······ ···ग्रेजुएट सुनीता के व्यक्तित्व को तुम लोगों ने खिलौना समझा···सब कुछ कहा—कुलच्छनी, जल्लाद, पागल···और भाभी···के अन्दर का विद्रोही मन इन छद्म नामों को नहीं ओढ़ सका। स्वच्छताप्रिय होना कुछ इन्सान चाहते हैं, तो यह तो उनका स्वभाव है, तुम्हें क्यों अखरता है ? फिर वे स्वयं ही तो सफ़ाई करती हैं···तुम क्यों अड़ंगा लगाते हो ?

अमित : और वह डब्बू को क्यों मारती है ?

चन्दन : तुम सबसे प्रतिशोध लेने के लिए। तुम डब्बू को उनके पास जाने नहीं देते। डब्बू तुम सबका प्यारा है इसलिए वे डब्बू को मारती हैं, ठण्डे पानी में रात को डुबो देती हैं, जिससे तुम्हें कष्ट हो। ऐसा ही एक केस लखनऊ में डॉ० माथुर के पास आया था। मैंने उस केस की पूरी स्टडी की थी। वह औरत केवल एक महीने के उपचार से ठीक हो गयी।

डॉक्टर सहाय : ऐसा ही एक केस हमारे यहाँ मनोवैज्ञानिक संस्थान में भी आया था।

चन्दन : तुम्हें अपने को बदलना होगा, अमित ! भाभी को जितना

प्यार वे चाहती है देना होगा, डब्बू को उनके पास छोड़ना होगा, और तुम देखना भाभी की स्थिति में आशातीत परिवर्तन हो जायेगा।

डाक्टर सहाय : ठीक कहते हो, चन्दन ! अमित ! अब सुनीता जी को लेकर चलेंगे डॉक्टर पन्त के पास। वे मनोवैज्ञानिक संस्थान के डायरेक्टर हैं। सब ठीक हो जायेगा।

सब एक साथ उठते हैं। पर्दा गिरता है।

५

तूफ़ान और शहनाइयाँ

पात्र

माँ	(आयु ४५ वर्ष)
संजू (संजय)	पुत्र
मालो (मालती)	पुत्री
दिलीप	संजू का मित्र
हरि	नौकर

के पास जाकर किताबें झाड़ने लगता है। एक किताब खोलकर देखता है। किताब में शायद कोई तस्वीर है। तस्वीर देखकर) हे मेरे राम! आदमी है कि घनचक्कर··· इतनी बड़ी-बड़ी मूछें? (अपनी मूछों पर हाथ फेरता है। किताबें रखकर भाड़ू लगाने लगता है।)

संजू का प्रवेश। रंग गोरा, नीलाभ नेत्र, नयी रोशनी का पढ़ा-लिखा युवक प्रतीत होता है।

संजू : हरि दादा! इतनी देर हो गई! अम्मा समझ रही हैं, तुम अभी दूध लेकर नहीं लौटे। अभी तक चाय भी नहीं बनी।

हरि : दूध तो कब का आ गया, छोटे राजा! डिब्बे में रख आया अम्मा जी के पास। ···आज बड़ी ठण्ड है, छोटे भय्या! हाथ जमे जाते हैं···भाड़ू लगाते···लगाते।

संजू : जल्दी चाय लाकर दो हरि दादा! बिना चाय के तो अपने राम के कुछ बस का नहीं।

हरि : (जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर) अभी जाता हूँ, छुटके राजा!

संजू : छुटके राजा! बड़के राजा! यह सब क्या कहते हो, हरि दादा? राजा शब्द का प्रयोग हम जैसी स्थिति के लोगों के लिए···अपने राम को तो जँचता नहीं भाई!

हरि : तो फिर···फिर···क्या कहूँ?

संजू : केवल संजू···क्या इतना काफी नहीं?

हरि : ना भय्या, मुझसे तो यह नहीं होगा······केवल सं···जू··· संजू···भय्या राम···राम, तोबा···तोबा···भला कहीं अच्छा लगेगा संजू······ना बाबा······ना······।

चला जाता है। मालो का प्रवेश। मामूली छींट की साड़ी पहने है। बाल अस्त-व्यस्त हैं, आकृति से आभिजात्य टपकता है।

मालो : लो भय्या! चाय··· (कप हाथ में पकड़ाती है)।

संजू : (चाय का प्याला हाथ में लेकर एक घूंट पीकर) अब तो चाय भी अच्छी नहीं लगती, मालो! सब कुछ फीका··· फीका···सा लगता है। यह दुनिया कितनी रंगीन, सपनों सी मोहक···पर मुझे तो···मुझे तो, क्या कहूँ बस···।

मालो : तुम तो, भय्या! हमेशा दार्शनिकों की-सी बातें करते हो। दुनिया को रंगीन मानो तो रंगीन, मायाजाल मानो तो मायाजाल। दुनिया तुम्हें गोरखधन्धे से अधिक लग भी क्या सकती है···तुम ठहरे पूरे फिलॉसफर···

संजू : तू तो मजाक करती है मालो ! यही कहना चाहती है···

मालो : भाभी ला दो ।

संजू : और क्या बिल्ली को ब्याह में···

मालो : बस भय्या ! बिल्ली बन्दर की गाली मत देना······नहीं तो······ ।

संजू : नहीं तो···घर से निकाल दिया जाऊँगा ? (हँसता है, फिर सोचता है) मालो को भाभी चाहिये··· । अम्मा को बहू चाहिये···दादी माँ को··· ।

मालो : संजू भय्या ! सोचकर भी देखा है तुमने ! दादी माँ की उम्र में जब पहुँचोगे, तब पता चलेगा । हर नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का मजाक बनाती है···उसकी भावनाओं को जानने की चेष्टा नहीं करती···अम्मा और दादी माँ के मन की पीड़ा को समझ कर तो देखो···तुमने तो रट लगा रखी है··· "दुनिया गोरखधन्धा है—सपनों का जाल है । ब्याह नहीं करूँगा"···जरूर, तब तो क्वार कौंटना [illegible] ।

संजू : ओहो···अब तो मुँह खुला है···झड़ी नहीं रुक [illegible] उपदेशों की । हाँ मालो, तुझे मालूम है रत्ना लौट आयी है···अपने गाँववाले नये घर में ?

मालो : रत्ना दी लौट आयी हैं ? ससुराल से ? कब भय्या ?

संजू : परसों··· ।

मालो : परसों···रत्ना दी लौट आयी हैं ?

वातावरण में निस्तब्धता छा जाती है । तभी अम्मा का प्रवेश । मालो ट्रे लेकर चली जाती है ।

अम्मा : क्या कहता है रे ! रत्ना लौट आयी है ? यह कैसे हो गया ?

संजू : हाँ, माँ ! रत्ना आ गई है ।

एक मिनट तक खामोशी छायी रहती है ।

माँ : बेचारी रत्ना···एक वर्ष भी तो नहीं हुआ···अभागी लड़की (आँसू पोंछती है) ।

संजू : हाँ, माँ ! बड़ी हवेली की रोशनी व रौनक··· [illegible] राजकुमारी रत्ना···भाग्य भी कितनी [illegible] विधाता कभी इतना दर्द लिख देता है [illegible] [illegible] देता है जीवन के [illegible] [illegible] यह [illegible] [illegible] [illegible]

संजू के दोस्त दिलीप का प्रवेश। वह संजू-जैसा ही सौम्य-दर्शन है।

दिलीप : किसकी चर्चा हो रही है, संजू? बड़े मशगूल हो और, माँ! आप··· । आपकी आँखें क्यों लाल हैं? क्या बात है? (माँ के चरण छूता है)।

माँ : जियो बेटा! बहुत दिनों बाद आये (सिर पर हाथ फेरती है)।

संजू : ओहो, दिलीप! आज आप आये हैं इतने दिनों बाद! मैंने भी कसम खाई थी कि जब तक तू नहीं आयेगा, मैं भी तेरे पास··· ।

दिलीप : नहीं जाऊँगा···तेरी भीष्मप्रतिज्ञा की परिधि को तोड़ने ही तो मैं आया हूँ। (माँ से) देखो माँ! इसकी बातें···इसे तो बस लड़ना आता है। जब देखो···तब लड़ाई···मिलना बाद में···लड़ना पहले।

माँ : (हँसती है) तुम बातें करो, बेटा! मैं अभी आती हूँ। जाती है।

संजू : दिलीप! रत्ना लौट आयी है।

दिलीप : रत्ना···रत्ना लौट आयी है? कैसे? क्या कहते हो संजू?

संजू : हाँ, दिलीप! मुझे लगता है आज आकाश···आकाश नहीं रहा···धरती···धरती नहीं रही···बेदर्द तूफानों ने जिन्दगी को खानाबदोश बना दिया है। इनमें मैं कितना भटक रहा हूँ, दिलीप!···इन प्रत्यावर्तनों ने मेरे मन को कितना भरमाया है?

दिलीप : जानता हूँ, संजू! सब कुछ जानता हूँ। मेरी आँखों में आज वह दिन तैर रहा है जब दादी माँ ने अपना आँचल फैलाकर रत्ना के द्वार पर जाकर अपनी आँखों की रोशनी माँगी थी···अपने प्राणों का दान माँगा था···मिन्नतें की थीं··· चिरौरियाँ की···थीं।

संजू : और···अपना खाली आँचल समेट कर यों ही लौट आयी थी, दादी माँ! यही न? (हँसता है)।

दिलीप : इतनी खोखली हँसी मत हँसो, संजू!···मत हँसो···मेरा दिल बैठ रहा है।

संजू : अच्छा चलो थोड़ा घूम आयें, स्वस्थ हो लें···(दोनों का प्रस्थान)।

हरि आकर मेज पर सभी को आयी डाक रख जाता है। मालती का प्रवेश। पत्रों की ओर देखती है।

मालो : ओह ! आज की डाक आ गयी······(एक पत्र उठाकर देखती है······रख देती है······ । मुख पर कभी प्रसन्नता छलकती है, कभी विस्मय·············दूसरा पत्र खोलकर पढ़ती है ।)

मालो !

तुम्हें मेरे बारे में पता चल गया होगा ! मैं आ गयी हूँ, मालो···फिर आ गयी हूँ । जीवन की उस कहानी को मैं दुहराना नहीं चाहती । इन्सान जो चाहता है सब उसे मिल ही जाये—इन्सान के सारे सपने सच हो ही जायें, यह तो जरूरी नहीं है, मालो !······पर मुझे आज लगता है कि मेरे अन्तर का कोई कक्ष किसी के लिए देवदास बन गया है, मालो ! देवदास···बन गया है······इतनी उदासी···इतना सूनापन··· ।

तुम्हारी रत्ना

मालो : अन्तर का कोई कक्ष किसी के लिए देवदास बन गया है··· देवदास बन गया है···रत्ना दी के अन्तर का कोई कक्ष··· देवदास···देवदास जैसा सूना······वीराना (आँखों से आँसू पोंछती है) ।

पहला पत्र खोलकर पढ़ती है—

पढ़कर बेचैन होकर इधर-उधर घूमती है । माथे पर पसीने की बूँदें झिलमिलाती हैं—पसीना पोंछती है ।

मालो : उफ़ यह पत्र ! क्या भय्या की कहानी की पुनरावृत्ति मेरी जिन्दगी में भी होने जा रही है···नहीं···नहीं···नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी······(माँ का प्रवेश)···

माँ : क्या है, मालो ? किसका पत्र है बेटी ?

मालो : (संयत होकर चेहरे का भाव बदलकर) रत्ना दी का पत्र है, माँ !

माँ : (विस्मय से) रत्ना बेटी ने फिर पत्र लिखा है, मालो ? फिर पत्र लिखा है ? कहानी की समाप्ति हो जाने पर भी क्या कहानी का आरम्भ हो सकता है ? नहीं, नहीं, मालो !··· अब रत्ना के पत्र की कोई जरूरत नहीं थी ।

संजय और दिलीप का प्रवेश ।

दिलीप : ऐसी कठोर बात मत करो, माँ ! हर कहानी का अन्त एक-सा नहीं होता । कोई कहानी समाप्त होकर फिर प्रारम्भ होती है । कोई अपने सूत्रों को आरम्भ में ही समेटकर समाप्त

हो जाती है।

संजू : अपने वर्ग के आभिजात्य से आज वे लोग नीचे उतर आये हैं, अम्मा, नीचे उतर आये हैं। बड़ी हवेली का गर्व धरती पर गिरकर चकनाचूर हो गया है, माँ !

माँ : और उस गर्व का शिकार बने वह भोली लड़की, जिसकी आँखों में अभी तक बचपन का भोलापन अंगड़ाइयाँ लेता है, जिसके ओठों पर भोली मुस्कान······

मालो : लेकिन अम्मा !···अब तो वह सवेरे की मुस्कान असमय में ही साँझ बन चुकी है······ढली हुई साँझ··· । बचपन की भोली उमंगें उजड़ गयीं, माँ !

संजू : साँझ क्या फिर अगले दिन सवेरा नहीं बन जाती, माँ ! मुस्कान उजड़कर क्या फिर आबाद नहीं होती ? इस दुनिया में सब कुछ होता है, माँ ! सब कुछ होता है। उजड़कर बसना और बसकर उजड़ना, यही तो इस ज़िन्दगी का क्रम है।

माँ : हाँ बेटे ! यही इस ज़िन्दगी का क्रम है···(जाती है। मालो भी पीछे-पीछे जाती है)।

संजू : बेचारे राजा साहब ब्याह के पाँच महीने बाद ही मृत्यु को अभिशप्त हो गये······ ।

दिलीप : होते भी क्यों नहीं···शराब क्या कम पीते थे ? फिर नयी-नयी बीवी के रूप की मादकता ! शराब से अपने जीवन का ग़म गलत करना चाहते होंगे, संजू !

संजू : हाँ, और क्या ? मुझे उस दिन का रत्ना का मासूम चेहरा भुलाये भी नहीं भूलता, दिलीप ! वह विदाई की साँझ ! लगता था ब्याह की रोशनियाँ कितना बड़ा अन्धेरा लेकर आ रही हैं ? रत्ना सचमुच रो रही थी। मैंने कहा था, रत्ना ! रो मत, और वह हँस पड़ी थी। उसकी वह हँसी··· वह हँसी···वह हँसी तू क्या जानेगा, दिलीप ! तू नहीं जान सकता—नहीं जान सकता।

दिलीप : और रत्ना का वह मगरूर पिता, जिसकी बेटी उसके देखते-देखते आज ज़िन्दा लाश बन गयी······ ।

संजू : अपने अपराधों की क्षमा माँगने भगवान् के दरबार में चला गया, दिलीप ! ब्याह के अगले दिन ही उसका हार्ट फ़ेल हो गया।

दिलीप : ······और रत्ना अकेली रह गयी······ससुराल में कोई नहीं, माँ के घर भी बूढ़ी माँ के अतिरिक्त और कोई

एक बच्चा तक नहीं ।

संजू : अपने पति की सारी सम्पत्ति एक अनाथाश्रम के नाम कर रत्ना ने अपने पति का नाम अमर कर दिया ।

मालो का प्रवेश ।

मालो : पति ही की सारी सम्पत्ति नहीं, यहाँ पिता की भी सारी सम्पत्ति से एक कन्या पाठशाला की संस्थापना का संकल्प कर लिया था रत्ना दी ने ।

दिलीप : ओह ! रत्ना महान् है ।

संजू : मैं आता हूँ, दिलीप ! मालो ! तब तक तू दिलीप से बातकर।

संजू का प्रस्थान । दिलीप बैठ जाता है । मालो जाने लगती है ।

दिलीप : (पुकारता है) मालो ! (मालो के कदम रुक जाते हैं) एक बात सुन जाओ मालो ।

मालो : बात तो मैं सुन चुकी हूँ, दिलीप बाबू ! मैं क्या करूँ ?

रोने लगती है ।

दिलीप : आँसू बड़े अमूल्य हैं, मालो ! यों मत बहाओ ।

मालो : आप जानते हैं, दिलीप बाबू ! संजू भय्या कितने दुखी हैं ?

दिलीप : हर वफ़ादार दोस्त अपने दोस्त के गम से दुखी रहता है, मालो ! क्या तुम सोचती हो मुझे दुःख नहीं·········· ।

मालो : ऐसी स्थिति में·········अपने मन का राग अलापना क्या उचित लगता है ?

दिलीप : उचित-अनुचित की बात मैं नहीं जानता, मालो ! मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ । जब तक मेरे दोस्त की पीड़ा पीड़ा रहेगी, मैं अपने सपनों को आबाद करने की बिल्कुल कोशिश नहीं करूँगा, मालो ! नहीं करूँगा पर··········मेरे मन के एक प्रश्न का उत्तर तो दे दो, मालो········· !

मालो : प्रश्नों के समाधान खोजने की हर इन्सान चेष्टा करता है, दिलीप बाबू ! प्रश्न जितने उलझते हैं उतना ही जीवन कंचन बनता है । पर क्या प्रश्नों का उत्तर केवल वाणी द्वारा ही दिया जाता है ? अन्तर को मथनेवाले प्रश्न जब आँखों में आते हैं, तो आँखें ही इसका उत्तर दे दिया करती हैं दिलीप बाबू·········· !

दिलीप : मालो········· !

मालो : हाँ दिलीप बाबू !

दिलीप : ···तुम्हारे प्रति मेरे बचपन का वह भोला कौतूहल आक-

र्पण बन जायेगा, मैं नहीं जानता था।

मालो : मैं जानती थी, दिलीप बाबू ! मैं जानती थी बहुत पहले से जब मैंने पहली-पहली बार तुम्हें देखा था और तुम मुझसे...

दिलीप : रूठकर झगड़कर घर के बाहर चले गये थे...यही न ? (हँसता है) और वह भी झगड़ा किस बात पर हुआ था याद है ?

मालो : कैरम की 'क्वीन' पर। तुम कहते थे क्वीन मेरी है और मैं कहती थी मेरी। मैंने क्वीन ले ली और तुम रूठकर चले गये।

दिलीप : और फिर दूसरे दिन...।

संजय का प्रवेश। मालो और दिलीप खड़े हो जाते हैं।

दिलीप : मैं अब चल रहा हूँ, संजू ! अभी आऊँगा, जरा दादी माँ के पास हो आऊँ (दिलीप का प्रस्थान)।

मालो : मैं भी अभी आती हूँ, भय्या ! (मालो का प्रस्थान)।

संजू : (घूमता है। घूमते-घूमते एकाएक पत्रों की ओर दृष्टि जाती है। (रत्ना का पत्र खोलकर पढ़ता है।) रत्ना ने लिखा है—"पर मुझे आज लगता है कि मेरे अन्तर का कोई कण किसी के लिए देवदास बन गया है, मालो ! देवदास बन गया है।" रत्ना ! क्या यह सच है—सच है रत्ना ?... तुम अब भी... (थोड़ी देर सोचता है, दूसरे पत्र की ओर दृष्टि जाती है...खोलकर पढ़ता है)

प्रिय प्रभुशंकर जी !

पत्र मिला ! पाकर प्रसन्नता हुई। आपकी बेटी मालती का सम्बन्ध मुझे अपने पुत्र दिवाकर के लिए स्वीकृत है। आशा है इस रविवार को आप हमारे यहाँ आकर टीके की रस्म अदा कर देंगे।

विनीत

चन्द्रसेन

संजू : मालती का सम्बन्ध दिवाकर के साथ ? वह दिवाकर...जो गर्ल्स कॉलिज की लड़कियों के पीछे चक्कर लगाता हुआ पुलिस के एक सिपाही के द्वारा बुरी तरह पीटा गया था ? वह दिवाकर जो अपनी माँ के गहने लेकर घर से भाग गया था और छः महीने बाद बम्बई की जेल से छूटकर आया था ?...नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। माँ ! माँ !

माँ, मालती और दिलीप का प्रवेश।

संजू : यह क्या हो रहा है, माँ ? दिवाकर के साथ मालती का

सम्बन्ध ?

दिलीप : मालती का दिवाकर के साथ सम्बन्ध ?

मालती : हाँ भय्या ! इस देश की यही परम्परा है। हर लड़की यदि वह समर्पिता भी है, तो कुल की आन के नाम पर बड़े घर में ब्याही जाती है। रत्ना दी की बात आप नहीं जानते क्या ?

संजू : सब जानता हूँ और अब मैंने सोच लिया है। इन थोथी मर्यादाओं की दीवारें अब नहीं खड़ी रहेंगी···नहीं खड़ी रहेंगी। रत्ना को मैं अपनाऊँगा। समाज यदि रास्ते में चीन की दीवार-सा अड़ भी जाय, तब भी मैं नहीं रुकूँगा। मैंने जो सोच लिया है, वह पत्थर की लकीर बनकर ही रहेगा······।

माँ : संजू ! बड़ी हवेली की विधवा बेटी रत्ना मेरे घर की बहू बनेगी ?

दिलीप : हाँ, माँ ! हर संकल्प एक नया सवेरा लेकर आता है। रत्ना इस घर की बहू बनेगी। झूठी छलनाओं के ये घेरे टूटकर ही रहेंगे···।

मालती : रत्ना मेरी भाभी बनेगी ? मेरी हमजोली सखी रत्ना, जिसके प्राणों में करुणा की लहरें आलोड़ित होती रहती हैं, जिसकी आँखों में स्नेह, ममता और पवित्रता की त्रिवेणी लहराती है। हाँ, रत्ना मेरी भाभी थी पहले भी···एक तूफ़ान आया था, माँ ! वह तूफ़ान अब शान्त हो गया है। तूफान के बाद की-सी यह निस्तब्धता अब मंगल की शहनाइयों से गुंजरित हो उठेगी। मैं आज कितनी खुश हूँ···कितनी खुश हूँ।

संजू : और दिलीप इस घर का दामाद बनकर इस घर में आयेगा ···दिवाकर नहीं।

दिलीप और मालो सर झुका लेते हैं।

माँ : ओह, अगर मेरे बच्चों की खुशी इसी में है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। कल तक तुम्हारे पिताजी भी कलकत्ता से लौट आयेंगे। वे भी खुश होंगे इन समाचारों से।

सबके मुखों पर प्रसन्नता का भाव है।

पर्दा गिरता है।

●

६
सूली पर चढ़ा एक और मसीहा

पात्र

माँ	(प्रवस्था लगभग ५५ वर्ष)
पुनीत	छोटा पुत्र
दीपक	पुनीत से बड़ा पुत्र
रम्भा	पुनीत से छोटी बेटी
रतिका	रम्भा की सहेली

[पर्दा खुलता है।

घर का आँगन है। एक ओर एक खाट बिछी है। खाट के आगे एक छोटी मेज है, जिस पर प्लेट में एक प्याला रखा है। रंगमंच के दाहिनी ओर बाहर जाने का द्वार है। बायीं ओर दो दरवाज़े हैं, जो दो कमरों में जाते हैं। सामने एक दरवाज़ा है, जो रसोई में खुलता है। खाट के पास में चटाई बिछी है। चटाई पर उल्टा लेटा हुआ दीपक एक किताब पढ़ रहा है। सामने दीवार की ओर रसोई के दरवाज़े तक एक अलगनी बँधी है, जिस पर कुछ कपड़े सूख रहे हैं। सूखे कपड़े एक ओर खिसका दिये गये हैं।

प्रातःकाल लगभग ९–१० बजे का समय है।

गर्मी का मौसम है।

पात्रों की वेशभूषा मध्यमवर्गीय परिवारों जैसी है।

रसोई से बर्तनों के खड़कने की आवाज़ सुनायी देती है। शायद एक साथ दो-तीन बर्तन किसी के हाथ से गिर पड़े हैं। रसोई के दरवाज़े से माँ का प्रवेश। वह लंगड़ाती-सी आकर खाट पर बैठ जाती है। पाँव पकड़ती है।]

माँ : मरा भगौना पाँव पर गिर गया।

दीपक : (खड़ा होकर, माँ का पाँव पकड़कर) क्या चोट लग गई, माँ? मैं आयोडैक्स लाता हूँ।

बायीं ओर प्रस्थान—शीघ्र ही प्रवेश।

दीपक : मैंने लाख बार कहा है, माँ! काम में जल्दी मत करो,

पर तुम मानती ही नहीं। अब लगता है, तुम थकने लगी हो। (माँ के पाँव में आयोडेक्स मलता है)।

माँ : अरे जाने भी दे, ठीक हो जायेगा। ऐसी तो छोटी-मोटी चोटें रोज लगती ही रहती हैं।

दीपक : (आयोडेक्स मलता रहता है) कुछ आराम मिला ?

माँ : हाँ कुछ लगे तो है।

दीपक : माँ ! मैं आज रात को देर से घर लौटूंगा। शेखर की शादी है।

आयोडेक्स मलना बन्द कर देता है।

माँ : (खाट पर से उठते हुए) शेखर की शादी है ? ले यही तो तेरा एक दोस्त बचा था। आज उसकी शादी भी हो जायगी।

दीपक : हाँ, माँ ! शादी तो शेखर की बहुत पहले हो जाती, पर मानता ही नहीं था शेखर।

माँ : तू भी तो नहीं मानता, और अब तो तेरा कोई काम ही नहीं है। जब काम था, तभी तूने कब सुनी ? लड़कीवाले सिर रगड़-रगड़ कर लौट गये।

दीपक : मैंने कितनी बार कहा है, माँ ! पुरानी कहानी मत दोहराओ, पर तुम मानती ही नहीं। अच्छा, तो मैं जा रहा हूँ, अब ! (पास आकर, धीरे से) क्या १५ रुपये दे सकोगी, माँ ? शेखर की शादी में और कुछ नहीं तो तिलक तो देना ही होगा।

माँ : (कुछ सोचती-सी है) रुपये···पन्द्रह···? मेरे पास तो, बेटे, दस का नोट है बस।

दीपक : लाओ, माँ ! यही सही।

माँ : (आंचल से खोलकर देती है।) अरे हाँ, तेरी उस नई नौकरी का क्या हुआ ? तू तो कहता था कि शेखर के ऑफ़िस में ही है।

दीपक : अब तो शेखर की शादी के बाद ही कुछ होगा।

कमरे की ओर प्रस्थान। माँ कुछ देर खाट के पास खड़ी रहती है, कुछ सोचती है। कमरे के दरवाजे की ओर बढ़ती है, फिर कुछ सोचकर लौटती है। तैयार होकर कमरे से दीपक का प्रवेश।

दीपक : अच्छा, माँ ! मैं जा रहा हूँ ?

माँ : जा बेटे ! दरवाजा मिलाकर भेड़ता जइयो।

दीपक का प्रस्थान दायीं ओर से।

माँ रसोई में जाती हैं। बर्तनों को उठाने-धरने की आवाज सुनायी पड़ती है। तभी बाहर दरवाज़े पर थपथप होती है।

माँ : (रसोई से निकलकर) कौन है ?

कोई बोलता ही नहीं, किन्तु फिर भी थपथप जारी है। माँ दरवाज़े की ओर बढ़ती है, तभी दरवाज़ा खोलकर रतिका का प्रवेश और माँ को प्रणाम।

माँ : आओ बेटी ! आओ, खुश रहो। आज तो बहुत दिनों बाद आयी हो !

रतिका : हाँ, माँ ! इम्तहान करीब आ रहे हैं। कॉलिज से लायब्रेरी चली जाती हूँ। देर हो जाती है लौटते-लौटते। (इधर-उधर देखकर) रम्भा कहाँ है, माँ ?

माँ : कॉलिज गयी है।

रतिका : और कोई भी नहीं दीखता।

माँ : दीखे कोई कहाँ से ? दीपक अपने दोस्त की शादी में गया है, और पुनीत रात लौटा ही नहीं। मेरी जान चिन्ता में अटकी रहती है। घूमने की नौकरी बड़ी बुरी होती है, बेटी ! पर क्या करो ? पेट के लिए तो सब कुछ करना ही पड़ता है।

रतिका : अच्छा अब चलती हूँ, माँ ! कॉलिज जाना है।

माँ : ऐसे ही चली जाओगी क्या ? एक कप चाय लाती हूँ।

रतिका : नहीं माँ ! चाय घर से लेकर ही चली थी।

माँ : अच्छा बेटी ! बड़ी उमर हो। आया करो कभी-कभी। तबियत खुश हो जाती है देखकर (रतिका के साथ-साथ दरवाज़े तक जाती है, फिर लौटती है) कैसी देवी-सी लड़की है। देखे से भूख भागती है। (थोड़ी देर खड़ी रहती है। ऊपर की ओर देखकर) कितनी धूप चढ़ आयी है ! खाना बनाना है। (रसोई की ओर जाती है। डिब्बे खोलने बन्द करने की आवाज़ होती है। तभी दरवाज़े (दायीं ओर) से पुनीत का प्रवेश, हाथ में ब्रीफकेस है। वह किसी गीत की कड़ी गुनगुना रहा है। गीत क्या है कुछ सुनायी नहीं देता)।

माँ : आ गया, बेटे ! रात बड़ी देर तक तेरा इन्तज़ार करती रही।

पुनीत : हाँ माँ ! मैं चलते समय कहना भूल गया था । मुझे रुकना ही था । सारे काम जो बाक़ी थे, निपटाने थे । काम करके ही लौटा हूँ । और कोई भी नहीं है क्या घर में ? दीपक भय्या कहाँ गये ? रम्भा कहाँ है ?

माँ : रम्भा कॉलिज गयी, और दीपक शेखर की शादी में ।

पुनीत : क्या शेखर दा की शादी है ? चलो अब दीपक भय्या भी तैयार हो ही जायेंगे । धीरे-धीरे उनके सब दोस्तों की शादी हो गयी ।

पुनीत का बायीं ओर प्रस्थान । माँ खाट के पास खड़ी रहती है । फिर अलगनी से सूखे कपड़े उतारती है, खाट पर रख देती है, एक-एक की तह बनाकर रखती है । बायीं ओर से पोस्टमैन का स्वर सुनाई पड़ता है ।

पोस्टमैन : पुनीत पण्डित··· ।

माँ दरवाजे की ओर से दो पत्र लेकर लौटती है । पुनीत का कमरे से प्रवेश।

पुनीत : किसकी चिट्ठियाँ हैं, माँ ?

माँ : ले तू ही देख, मुझे तो नजर कम पड़े है ।

पुनीत : एक तो सुमीत भय्या का पत्र है, माँ !

माँ : देख क्या लिखा है ?

पुनीत : (पत्र पढ़कर) माँ, सुमीत भय्या का बिजनेस फ़ेल हो गया । उन्होने दुकान बन्द कर दी । अब वे बिल्कुल खाली हैं ।

माँ : बिजनेस फेल हो गया ? लो बोलो, अब क्या होगा ? भगवान् भी मरते को मारे है ।

पुनीत : और माँ, पम्मी का रिश्ता भी टूट गया । लड़के वाले ने भय्या के बिजनेस के फेल होते ही रिश्ता तोड़ दिया ।

माँ : (चुप रहती है एक क्षण) आजकल कितनी महँगाई का जमाना है ! चार बच्चे, दोनों आदमी खुद । कैसे गुजारा होगा ? बड़ी मुश्किल में जान है । भगवान् भी तो नहीं देखता । मैं किसकी सुनूँ, किसकी नहीं ? (सिर पकड़कर बैठ जाती है) ।

पुनीत : मैं आज ही भय्या को यहाँ आने के लिए लिखे देता हूँ, माँ ! परदेश में कौन अपना है ? जब गाड़ी चल रही थी, तो सब अपने थे । अब······कौन······

माँ : हाँ बेटा, लिखना तो पड़ेगा ही । मरता क्या न करता ?

दूसरा खत किसका है, बेटे ?

पुनीत : (दूसरा पत्र खोलकर पढ़ता है।) यह पत्र सतीश दादा का है, माँ ! वे दो वर्षों के लिए जर्मनी जा रहे हैं। भाभी अपनी तीनों बच्चियों को लेकर आ रही हैं। यहीं रहेंगी।

माँ : सुमित्रा आ रही है बच्चों को लेकर ? सतीश जर्मनी जा रहा है ? (सोचती है कुछ)।

पुनीत : क्या सोचने लगीं, माँ ?

माँ : कहाँ…क्या सोच रही हूँ बेटा ! तू इतनी भारी जिम्मेदारियाँ कैसे सम्भालेगा ? सुमित्रा भला कैसे निभेगी यहाँ ! पैसा उसे प्यारा है। खर्च करते दम निकलता है, फिर तीनों लड़कियाँ बड़ी बिगड़ी आदतों की हैं। कैसे होगा सब कुछ ? सबसे ऊपर बात है कि सुमीत और सतीश के बच्चों की पटेगी नहीं।

पुनीत : तुम भी कहाँ दूर-दूर की बातें सोचने लगीं, माँ ? राम-राम करके साथ रहने को मिलता है।

माँ : (सोचती-सी खड़ी रहती है) कितने लोग घर में बढ़ जायेंगे ? सुमीत……सुमीत की बहू……चार बच्चे,… सुमित्रा……तीन बच्चे, दस आदमी एक साथ ? न घर में जगह है न इतना पैसा।

पुनीत : सब कुछ करना ही पड़ेगा, माँ ! और सुनो, माँ ! अब तो पम्मी की शादी की भी चिन्ता करनी पड़ेगी, रम्भा की चिन्ता तो थी ही। कितनी बड़ी हो गयी रम्भा ?

माँ : अब की फागुन की पूनो को २४ बरस की हो जायेगी। छोटी थोड़े ही है, और फिर दीपक का कोई काम नहीं।

पुनीत : राशन कार्ड पर भी सबकी यूनिट बढ़वानी पड़ेंगी, माँ !

माँ : हाँ बेटे ! सो तो करना ही है।

पुनीत : माँ ! मेरे पीछे कोई मुझे पूछने तो नहीं आया था ?

माँ : तुझे तो पूछने कोई नहीं आया। रम्भा की सहेली आयी थी। क्या नाम है उसका ?

पुनीत : ……रतिका आयी होगी।

माँ : हाँ रतिका ही। बड़ी भली लड़की है। बोलती है तो फूल झरते हैं।

पुनीत : जानती हो किसकी लड़की है, माँ ? लखपति बाप की इकलौती बेटी। सात भाइयों की अकेली बहन।

माँ : पर गुमान तो उसे बिल्कुल नहीं है। मुझे तो बड़ी प्यारी

लगती है।

पुनीत : अच्छा माँ, लाओ झोला दे दो। सब्ज़ी ले आऊँ। फिर मुझे फ़ुरसत नहीं मिलेगी।

माँ झोला लाकर देती है, पुनीत का प्रस्थान।

माँ खाट पर बैठ जाती है। बाकी कपड़ों की तह बनाकर रखती है, फिर खड़ी हो जाती है, अंगड़ाई लेती है।

माँ : हे भगवान्! कौन-से पापों की सज़ा दे रहे हो? वे नहीं रहे तो मैंने सन्तोष कर लिया था कि मेरे चार बेटे मेरे चार हाथ हैं। किस बात की चिन्ता है मुझे? चारों भाई मिलकर रम्भा को पार लगा देंगे, पर···पर···सब सोचना बेकार चला गया। **(सर पकड़कर बैठ जाती है)** बेचारा पुनीत! क्या करे क्या न करे? इतनी लम्बी गृहस्थी की गाड़ी कैसे खींचेगा अकेला बेचारा? हे भगवान्!

रम्भा का प्रवेश।

रम्भा : क्या कह रही हो, माँ? कैसी गाड़ी?

माँ : कुछ भी तो नहीं, बेटी! तू कॉलिज से जल्दी आ गयी!

रम्भा : हाँ माँ! आज हम लोगों ने स्ट्राइक की है।

माँ : स्ट्राइक, कैसी स्ट्राइक?

रम्भा : मँहगाई के खिलाफ़, पे बढ़ाने के लिए।

माँ : मँहगाई तो आकाश को छू रही है। मौत है हम बीच के आदमियों की। क्या खाएँ, क्या पहनें? तेरी नौकरी कितने दिन की और है, बेटी?

रम्भा : मेरी तो केवल तीन महीने की नौकरी थी, माँ! इस महीने की बीस तारीख को पूरे हो जायेंगे तीन महीने। अरुणा दीदी की मैटरनिटी लीव समाप्त हो रही है। वे आ जायेंगी इक्कीस तारीख से।

माँ : तेरी भी नौकरी खत्म हो जायेगी?

रम्भा : मेरी नौकरी थी भी कहाँ। वह तो दीपक भय्या ने कह सुनकर काम करा दिया था, वरना एक ज़रा-सी जगह खाली होती है, ढेर सारी एप्लीकेशन्स आ जाती हैं। सिफ़ारिश वाले क़िला जीत लेते हैं, हम जैसे लोग मुँह ताकते खड़े रह जाते हैं।

माँ : अच्छा, चल कुछ खा-पी ले। पुनीत को पूछना ही भूल गयी।

रम्भा : हाँ माँ! सुना है घर में बड़ी चहल-पहल होनेवाली है।

सतीश दा की श्रीमती जी अपने बच्चों के साथ तशरीफ़ ला रही हैं। सुमीत भइया भी सपरिवार आ रहे हैं। उनका बिजनेस·········

मां : फ़ेल हो गया।

रम्भा : यह खूब रही ! जब तक बिजनेस चला तो सुध भी नही ली कि कौन कहाँ पड़ा है। अब बिजनेस फ़ेल हो जाने पर घर की याद आयी है। यह भी एक ही रही !

मां : रम्भा !

रम्भा : रहने दो, मां ! क्या मैं अपने भय्या-भाभियों को जानती नहीं। सतीश भय्या कितने बदल गये, शादी के बाद से ? शादी क्या हुई, सारे रिश्ते टूट गये। भाई भाई नही रहे, मां मां नहीं रही और बहन—उसकी तो बात ही छोड़ो। अब जर्मनी जाते समय घर की याद आयी है।

मां : रम्भा ! चुप रह, बेटी !

रम्भा : कह लेने दो, मां ! सुमीत भय्या, श्रीमती सरला देवी तथा उनके बच्चे आज फिर इस घर में तशरीफ़ ला रहे है, जहाँ सभ्यता नहीं है, जहाँ के लोग असंस्कृत जिन्दगी जीते है, जो भद्दे ढंग से रहते हैं, जिन्हें बात करने की तमीज नहीं, जो···

मां : चुप नहीं होगी तू, रम्भा ?

रम्भा : मत रोको मुझे, मां ! दिल में इतना भर गया है कि गुबार निकलेगा नही, तो मैं पागल हो जाऊँगी। किसी ने सोचा था अब तक कि छोटे भाइयों की पढ़ाई है, बहन की शादी है। (थोड़ा रुककर) अपनी पम्मी का ब्याह रचाने बैठ गये थे, पर सोचा कभी कि पम्मी से बड़ी रम्भा है।

मां : चुप कर, बेटी ! चुप कर। अपने मन पर इतना बोझ मत डाल।

रम्भा : बोझ न डालूं, पर जो बोझ पड़ा हुआ है, उसे भी न उतारूं क्या ? याद है, एक बार कुछ रुपयों के लिए सतीश भय्या को लिख दिया था। दीपक भय्या, पुनीत भय्या और मेरी फ़ीस जानी थी, तो क्या उत्तर आया था, सतीश भय्या का ?—अपनी पे का पूरा चैक आपको भेज दूंगा, मेरे बिलों की अदायगी आप कर दें।

मां : अधिक मत बोल, रम्भा ! यह ठीक नहीं है।

रम्भा : क्या ठीक है, क्या ठीक नही है, मां ! मैं अब जान गयी हूँ। तुम्हें समझाने की जरूरत नही पड़ेगी, पर तुम कहती हो

चुप रहूँ ? बहुत दिन चुप रह चुकी हूँ। कभी भाइयों ने सोचा घर में विधवा माँ है···जवान बहन है और दो मासूम से अनाथ भाई हैं।

माँ : (क्रोध से) चुप रह, रम्भा ! आगे कुछ न बोल। तेरे बड़े भाई हैं, भाभियाँ हैं।

रम्भा : माँ, वे लोग बड़े हैं, मैं इसे अस्वीकार तो नहीं कर रही ? और हम छोटे है, तो इसलिए अत्याचार ही सहते रहें, यह नहीं होगा। वे बड़े थे तो कहीं तो अपना दायित्व निभाते ?

माँ : हे भगवान् ! क्या होगा ? इस घर की नैया अब डूबने ही वाली है।

रम्भा : भगवान् को याद करते-करते बूढ़ी हो गयीं, माँ ! पर भगवान् कभी तुम्हारे काम नहीं आया। भगवान् की आड़ में तुम अपने मन को छलती रहीं। वास्तविकता से सदा मुख मोड़े रहीं। दुखों से भागना चाहती थीं तुम, और दुःख थे कि पीछा ही नहीं छोड़ते थे। कोई छलिया चुपके से आता था, और तुम्हारे दामन में दुःख डालकर चला जाता था।

माँ : (रोती है)।

रम्भा : रो रही हो, माँ ! तुम ? मेरी बहादुर माँ रो रही है आज, जो झुकी नहीं कभी। जो टूटकर भी टूटी नहीं। जिसकी जिन्दगी में संघर्षों की बाढ़ आयी, पर जो अचल हिमानी-सी रही। वही माँ आज रो रही है, मेरी माँ !

माँ : (सुबकती है)।

रम्भा : "जिन्दगी रोने के लिए नहीं है।" जिस माँ ने सदा यह उदाहरण दिया था, वही माँ आज रो रही है ? हम तो जिन्दगी भर हँसे है, माँ ! आँसू भी हमारी आँखों में नहीं आते अब तो।

माँ उठकर रसोई में जाती है।

रम्भा : आज तक अपने को कितना छला है माँ ने ? कितना छला है ?

माँ का प्रवेश, खाट पर से चादर उठाकर।

माँ : ले, रम्भा ! अब तू घर आ गयी है। मुझे रामकिशन भय्या की दुलहन ने बुलाया था कल। कोई जरूरी काम था। हो आऊँ जरा।

माँ का प्रस्थान।

रम्भा : जाओ माँ ! यह भी तो दुःखों से भागने का एक ढंग विशेष ही है ! दुःखों से सब भागते हैं। दुःख किसी को अच्छे नहीं लगते और दुःख बेचारे अनचाहे मेहमान-से जिन्दगी में आ ही जाते हैं। (हँसती है) मेरी भोली माँ ? कहाँ तक छलोगी अपने को ? कहाँ तक भागोगी असलियत से ? कब तक अपने असली परिवेशों को भुठलाती रहोगी ? कब तक सच्चाई को नकारती रहोगी ? (हँसती है) हम तो सचमुच अब रोना भी भूल गये।

रतिका का प्रवेश।

रतिका : हलो, रम्भा ! क्या भूल गयीं ?

रम्भा : रोना और क्या ?

रतिका : (आश्चर्यचकित-सी मुँह फाड़े रम्भा को देखती है।)

रम्भा : अरे, मुँह फाड़े क्या देख रही है तू ? तू बहुत बुद्धू है। हम बुद्धिजीवियों की बात तू नहीं समझ सकती।

रतिका : क्या मतलब है, तुम्हारा ? मैं समझी नहीं।

रम्भा : कह दिया तू नहीं समझ सकती, नहीं समझ सकती। तू मूर्ख है।

रतिका : क्या कह रही हो, रम्भा ? मेरी तो सचमुच कुछ समझ में नहीं आ रहा।

रम्भा : हाँ, मैं ठीक ही कह रही हूँ। हमारे, पुनीत भय्या पूरे गृहस्थ हैं, क्या तू यह नहीं जानती ? इतने सारे बच्चे हैं उनके। उनके बिना वे सब अनाथ हैं। अब और कोई बच्चा इस घर में नहीं लाना चाहते हम। देख रतिका ! चाहे इस कान सुन, चाहे उस कान।

रतिका : अरे बाबा ! दोनों कान खुले हैं मेरे। कह तो सही (रम्भा को देखती है)।

रम्भा : मुझे क्या घूरती है, पगली ! मैं ठीक कह रही हूँ। तू अपना रास्ता नाप। यहाँ तेरी दाल नहीं गलेगी।

रतिका चुप विस्फारित नेत्रों से रम्भा को देखती है।

रम्भा : मुझे ऐसे देखकर तू समझती है, मैं अपना निर्णय बदल दूँगी ? नहीं, नहीं, ये प्यार-व्यार का चक्कर छोड़ यहाँ।

रतिका : प्यार-व्यार··· ?

रम्भा : तू पुनीत भय्या को प्यार करती है न ! इसी प्यार की ही बात में तुझसे कह रही हूँ। और कोई राह खोज तू प्यार की। तुझे प्यार का राजपथ चाहिये। कहाँ पगडण्डी

पर चलने तू आ गयी है ?

रतिका : अगर किसी को पगडण्डियों पर ही चलना अच्छा लगे तो…?

रम्भा : तो पगडण्डी उसे खूब सतायेगी, उसका टॉरचर करेगी, उसे मार डालेगी…।

रतिका : तू क्या कहना चाहती है आखिर ? मुझे पुनीत ने सब बता दिया है।

रम्भा : यही कि वह विवाह नहीं करेंगे ?

रतिका : नहीं ! नहीं ! यह तो नहीं। सब लोग घर आ रहे हैं, यही बात। -

रम्भा : सुन लिया तो तूने सब कुछ। अब बोल, क्या इरादे हैं ?

रतिका अपनी पुस्तक उठाती है। उसकी किताब से एक चित्र गिर पड़ता है। रम्भा चित्र उठाती है। देखती है।

रम्भा : सूली पर चढ़े मसीहा का चित्र ? यह तो तेरी तस्वीर है। प्लास्टर ऑफ पेरिस की सहायता से तूने मसीहा का सूली पर चढ़ा हुआ यह रूप धारण किया था। फ़ैन्सी ड्रैस कॉम्पीटीशन में तू फ़र्स्ट आयी थी। सब कह रहे थे, जानती है, क्या ? खैर, जाने दे। सच, तूने कमाल कर दिया था, उस दिन ! तू सचमुच में मसीहा लग रही थी।

रतिका : अरे हटा, बना नहीं।

रम्भा : बना नहीं रही। तस्वीर बड़ी प्यारी आयी है।

रतिका : तू तो उल्टी-सीधी बातें करने लगी।

रम्भा : उल्टी-सीधी बात ? तू कहाँ समझ सकती है, इन बातों की गहराई को ? रतिका ! सच तू नहीं जानती। मेरा दिल कितना दुःखता है—कितना दुःखता है (थकी-सी बैठ जाती है, फिर खड़ी हो जाती है)। मुझे ईसा मसीह का यह रूप बहुत भाता है। तुझे मसीहा की कहानी याद है, रतिका ?

रतिका : ईसा मसीह की कहानी ?

रम्भा : यहूदियों ने रोमन राजा पाइलट से जाकर प्रार्थना की कि जीसस को प्राणदण्ड दिया जाये।

रतिका : क्योंकि वह अपने को ईश्वर का पुत्र कहता था।

रम्भा : यहूदियों ने ईसा को फटे-पुराने कपड़े पहनाकर नगर में घुमाया। उनके कोड़े लगाये गये। उन्हें काँटों का मुकुट पहनाया गया, और फिर उन्हें कैलवरी नामक स्थान पर क्रूस पर लटका दिया गया।

रतिका : हाँ, उस समय कहते हैं कि धरती हिल उठी थी, वेलवरी की चट्टानें फट गयी थीं। प्रकृति मानो ईश्वर के पुत्र के साथ किये गये दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर अपना दुःख प्रकट कर रही थी।

रम्भा : मुझे तो सब याद है, ईसा की कहानी का हर पहलू।

रतिका : इसमें याद करने लायक क्या है ? सीधी-सादी कहानी है।

रम्भा : अच्छा रतिका, एक बात बता, क्या तू किसी और मसीहा की बात भी जानती है ?

रतिका : ना बाबा ! मसीहा तो एक ही हुआ है, क्रूस पर लटका दिया गया था जिसे।

रम्भा : नहीं, तू नहीं जानती इस नये मसीहा को, जिसे नियति ने संघर्षों के क्रूस पर लटका दिया है, जो टूट कर भी सब कुछ सहता रहा है, सहता रहेगा। जो आँसू पी-पीकर मुस्काता रहा है, मुस्काता रहेगा।

रतिका : किस मसीहा की बात कर रही हो, रम्भा ?

रम्भा : अपना पुनीत, जो जीते जी सूली पर चढ़ा दिया गया है, जिसके सामने दो भाइयों का परिवार है, दो क्वारी जवान लड़कियों की जिसे शादी करनी है, जो सुबह से शाम तक जिन्दगी की चक्की में पिसने के लिए छोड़ दिया गया है, जिसे बेरहमी ने अपने निर्मम हाथों से दबोच डाला है। जो जीकर भी मर रहा है। मसीहा तो मरकर भी जी उठा था पर यह नया मसीहा······यह नया मसीहा······

हाँफ जाती है।

रतिका : रम्भा ! **(अपना चेहरा अपनी हथेलियों में छिपा लेती है।)**

रम्भा : ठीक कहती हूँ, रतिका ! मेरी बात मान जा, यहाँ अपनी खुशियों का खून न कर। काँटों की राह पर अपनी फूल-सी जिन्दगी को मत ला, रतिका ! लौट जा यहाँ से, वापिस चली जा ! यहाँ तो अभावों के जलते हुए श्मशानों के अतिरिक्त तुझे कुछ नहीं मिलेगा। यहाँ सपने नहीं महकेंगे·········

रतिका सुबकती है।

रम्भा : लौट जा, रतिका, यहाँ से ! उस पंछी की बात सोच जो रात को ग़लत जगह बसेरा ले ले और रात भर छटपटाता रहे। तू ग़लत जगह आकर टकराई है, रतिका ! अभी तो कुछ भी नहीं बिगड़ा। अपनी जिन्दगी बरबाद न कर। एक

दिन भी सुख का नन्हा-सा कण तू नहीं पायेगी……यहाँ…

रतिका सुबकती है।

रम्भा : ये आँसू न बहा, रतिका ! यहाँ तो मिट्टी में गिरकर बेकार हो जायेंगे। कहीं किसी दूसरे दामन में गिरेंगे तो फूल बन जायेंगे। रतिका !……रतिका !…सच कहती हूँ, अपने पाँवों में कुल्हाड़ी मत मार, अपने भविष्य को कुहासों के गहरे धुंधलकों में भटकने के लिए मत छोड़। यहाँ के लोगों की ज़िन्दगी वेगानी है, यहाँ रस के झरने की आशा लेकर तू आ गयी थी, पर यह तो मरुस्थल है, मरुस्थल……

रतिका : नहीं रम्भा……नहीं। नदी की धारा को विपरीत दिशा में मोड़ दिया जाये तो……सोच………बेचारी नदी का क्या होगा ? क्या होगा ? ऐसा मत कह रम्भा……ऐसा मत कह………

रतिका की सुबकियाँ सुनायी पड़ती हैं, पर्दा गिरता है।

७

अलविदा, मेरे दोस्तों !

पात्र

झानसिंह (अवस्था ३५ वर्ष)

सल्लो झानसिंह की पत्नी

सन्तिया झानसिंह की वहन (अवस्था २४ वर्ष)

माँ झानसिंह की बहरी और बूढ़ी माँ

आमो, लाजो झानसिंह की बेटियाँ (अवस्था क्रमशः १६, १२ वर्ष)

कन्तू, मण्टू झानसिंह के बेटे (अवस्था क्रमशः १०, ८ वर्ष)

लड़का (अवस्था १२ वर्ष)

बन्तू, सन्तू, गातो, चम्पो झानसिंह के पड़ोसी

सिपाही नं० १

सिपाही नं० २

[समय—सायंकाल ५ बजे।

पात्रों की वेशभूषा से दैन्य टपकता है। वस्त्र सभी के मैले हैं, स्थान-स्थान पर पैबन्द लगे हैं। वस्त्रों से शरीर ढक रहा है बस। जैसे कन्नू की कमीज उसके शरीर के माप से बड़ी है, तो मण्टू की शरीर में मुश्किल से फँट रही है। यही स्थिति अन्य पात्रों की भी है।

रंगमंच पर पर्दा पड़ा है। प्रकाश केवल रंगमच के पर्दे के आगे के भाग पर पड़ रहा है। यह शहर की कोई सड़क है। लोग आ-जा रहे हैं। बड़े व्यस्त-व्यस्त-से लोग हैं, जैसे किसी को किसी से कुछ भी लगाव नहीं। देखते-ही-देखते किसी की जेब कट जाती है, शोर उभरता है कुछ, पर फिर लोग चलने लगते हैं। एक स्त्री चलते-चलते चीख उठती है—उसका लॉकेट खिच गया। चलते-चलते लोग रुकते हैं, एक-दूसरे को सन्देह-भरी नजरों से देखते हैं, पर फिर थोड़ी देर बाद आगे बढ़ जाते हैं। धीरे-धीरे एक बुलन्द, स्पष्ट आवाज पीछे से उभरती है —]

"मुझे आप नहीं जानते। नहीं ही जानते। जान भी कैसे सकते हैं? मैं मामूली-सा एक आदमी, व्यक्तित्व में कोई खासियत नहीं। समाज में कोई स्टेटस नहीं। भीड़ में धीरे-धीरे चल रहा हूँ खोया-खोया-सा। सच मानिये, मैं पहले बहुत ईमानदार था। पहले मालिक का सर्टिफिकेट भी मेरे पास है, पर मैंने वह नौकरी छोड़ दी। मेरा मन खाना-बदोश जो ठहरा। मालिक ने मुझे रोका, मैं नहीं रुका और न जाने क्या हुआ कि मेरा ईमान डोलने लगा। दूसरे मालिक का दूध उबालता, एक गिलास दूध स्वयं पी जाता और

मालिक के दूध में पानी मिला देता। शुरू-शुरू में मेरी आत्मा ने मुझे बहुत धिक्कारा, पर फिर तो आत्मा ने भी धिक्कारना छोड़ दिया। अभी तो दो महीने जेल में रहकर छूटा हूँ। दोष मेरा इतना ही था कि मुझे मालिक की सोने की घड़ी की चेन ने लुभा लिया था। कितने संकल्प किये हैं मैंने जेल में कि अब मैं ईमानदार रहूँगा। कभी भी कोई बुरा काम नहीं करूँगा, पर मेरे संकल्प तो बालू की दीवार बन गये हैं। मेरे मन का शैतान मुझ पर हावी हो जाता है। मैं हार जाता हूँ। मुझे लगता है मेरी बदनियती के पीछे मेरी ग़रीबी रही है। कितनी ग़रीबी··· उफ़···भीषण गरीबी···आप अनुमान नहीं लगा सकते। सुनिये, क्या आप आज सिनेमा जा रहे हैं? हाँ, तो आज मत जाइये न! मेरे घर चलिये, मेरे घर के पास का माहौल देख लीजिये। खून के आँसू बहाती, घुटनों के बल रेंगती-सिसकती ज़िन्दगी से मैं आपका परिचय कराऊँगा। आप अगर क्लब जा रहे हैं, तो आज मत जाइये न! मेरे साथ चलिये। आइये भी। देख रहे हैं ये घण्टाघर से स्टेशन की ओर जानेवाली सड़क, स्टेशन के पास बनी हुई मिट्टी की बीसियों झुग्गियाँ। यहीं एक झुग्गी में मेरा घर है।

पर्दा उठता है। रंगमंच पर अँधेरा है। फिर वही बुलन्द आवाज़ धीरे-धीरे उभरती है।

आइये, आइये, आप तो बहुत ही संकोची हैं। पहले अपने परिवार का परिचय तो करा दूँ। (प्रकाश आवाज़ के साथ-साथ घूमता है) ये जो एक टूटी-सी चौकी पर गठरीनुमा-सी चीज़ रखी हुई है, मेरी माँ है—बीमार माँ! जानते हैं कब से बीमार है ये? (प्रकाश चौकी पर बैठी माँ पर केन्द्रित है) पूरे १० वर्षों से अपने बीमार शरीर का बोझ ढोती हुई मेरी ये माँ! मैंने इसे रोज़ दवा दी है लाकर और दवा से इसे लाभ भी हुआ है। आप कहेंगे दवा कहाँ से लाते रहे? तो सुनिये, खड़िया और चीनी साथ पीसकर कभी होमियोपैथिक दवा की पुड़िएँ बन गयीं तो कभी खाने के सोडे में नमक मिलाकर वैद्य जी की दवा बना दी। और मेरी भोली माँ विश्वास के साथ आज तक उस दवा से लाभ पाती रही है।···और देखिये यह जो पैबन्द-लगी गन्दी साड़ी पहने खड़ी है कुछ सोचती-सी, यह सल्लो है। (प्रकाश

सल्लो पर केन्द्रित हो जाता है) आप नहीं जानते सल्लो को? मेरी औरत है। ब्याह हमारा कभी नहीं हुआ। यूँ ही साथ रहने लगे और अब तो यह मेरे चार बच्चों की माँ है। ये मेरे बच्चे हैं (प्रकाश बच्चों की ओर घूमता है) बड़ी लड़की शामो, छोटी लड़की लाजो और ये बीच में खड़े दो लड़के कन्तू और मण्टू (बच्चे सहमे-सहमे-से खड़े हैं) और ये है मेरी क्वारी जवान बहन सन्तिया···शान्ति। (प्रकाश शान्ति की ओर है अब) मुझे इसके लिए वर की तलाश है वर्षों से, पर पेड़ पर तो टँगे नहीं हैं वर। पैसा चाहिये, पैसा···और ये है मेरे पड़ोसी सन्तू, बन्तू, गातो, चम्पो। (प्रकाश धीरे-धीरे सब पर घूमता है) आखिर आ ही गये आप यहाँ। आइये, आइये, घर चलते है सब।

प्रकाश से पूरा रंगमंच भर जाता है। रंगमंच पर दायीं ओर एक झुग्गी है फूस की। बीच में दो खाटों को आड़ा-आड़ा खड़ा करके झोंपड़ी की शक्ल दे दी गयी है। बायीं ओर भी एक झुग्गी है। बायीं ओर की झुग्गी के आगे टूटी चौकी है, जिस पर गठरी जैसी आकृतिवाली माँ बैठी है, लिहाफ़ के नाम पर खाली रूमड़ ओढ़े। बीच की झुग्गी और बायीं ओर की झुग्गी के लोग झुग्गी के अन्दर नहीं हैं। शायद बाहर गये हुए हैं। तीनों झुग्गियों के आगे कुछ बच्चे डिबलियों से खेल रहे हैं। एक बच्चा टूटी पीपी बजाता है, पर पीपी बजती नहीं। एक बच्चा गुब्बारा फुलाता है, पर वह फूलता नहीं। तभी एक लड़के का एक रोटी लिये हुए प्रवेश।

लड़का : अबे यार! मजा आ गिया। कुत्ते के मुँह से मैंने ये रोटी छीन ली।

कन्तू, मण्टू तथा और बच्चे रोटी पर टूट पड़ते हैं।

लड़का : रोटी मेरी है हरामियों! मैंने कुत्ते के मुँह से छीनी है।

एक बच्चा : ला बे, सबको बाँट कर खा। तू ही कैसे खा जायेगा! कुत्ता तो सबका है।

सब रोटी पर टूट पड़ते हैं। लड़का रोटी को दूर उछाल देता है।

शान्ति : (दौड़कर रोटी उठा लेती है) खा लूँ मैं? पर नई, मैं नई खाऊँगी। तुम सब छोटे-छोटे हो। तुमें ज्यादा भूख लगी है।

अब मैं बड़ी हो गयी। आओ, सबको दे दूं। (वह टुकड़े तोड़-तोड़ कर सबमें बांटती है।)

लड़का : देख ले सन्तिया की बच्ची! मेरी रोटी दे दे, नईं तो··· ।

शान्ति : नईं तो तू मुझे खा जायेगा? (हँसती है) ले तुझे सबसे ज्यादा रोटी दूंगी। (आधी रोटी देती है।)

लड़का आधी रोटी लेकर शान्त हो जाता है। तभी ज्ञानू (ज्ञानसिंह) का प्रवेश। सब बच्चे खेलते रहते हैं, कुछ देर बाद चले जाते हैं। रह जाते हैं केवल सन्तिया, शामो, लाजो, कन्नू, मण्टू।

ज्ञानू : (माँ के पास जाकर जोर से) ओ माँ! कैसी है तू?

गठरी में हरकत होती है। वह उठकर बैठ जाती है।

माँ : अरे, तू आ गया ज्ञानू! मैं तो इन्तजार कर रही थी कि तू मेरी दवा लायेगा।

ज्ञानू : (जोर से) हाँ माँ, और दुनिया के काम चाहे भूल जाऊँ, पर तेरी दवा कैसे भूल सकता हूँ? ले, वैद जी ने दी है दवा। (दवा देता है, माँ ले लेती है।)

माँ : क्या कहवै है वैद?

ज्ञानू : (ऊँचे स्वर में) कहेगा क्या, माँ? दवा दे देता है, बस। ला एक पुड़िया दे दूं। (एक पुड़िया खोलकर माँ के मुंह में डाल देता है।)

माँ : कब की पानी माँग रही हूँ इस सन्तिया की बच्ची से, पर यह सुनै कब है?

सन्तिया : (जोर से) तू भी खूब झूंठ बोलै है, माँ! तूने कब पानी माँगा?

पानी लाकर देती है। बुढ़िया अपना एल्यूमिनियम का कटोरा बढ़ा देती है, और गट-गट पानी पी जाती है। फिर चौकी पर लुढ़क जाती है।

ज्ञानू : सल्लो कां है?

सन्तिया : भाभी अभी कां आयी है काम पर से। पूरे तीन घण्टे लगते हैं। २ बजे की गयी है, अब ५ बज रये हैं। आती ही होगी।

ज्ञानू अपना झोला खोलता है। डबल रोटी के सूखे टुकड़े चारों बच्चों को देता है।

कन्नू : मण्टू का टुकड़ा बड़ा है, मुझे छोटा क्यों दिया?

मण्टू : तुझे मेरी हर चीज बड़ी दिखायी देवै है सदा।

ज्ञानू : साले, कुत्ते के पिल्ले! टुकड़े-टुकड़े पर मरै है। ले शामो,

लाजो, तू भी ले और सन्तिया, तू भी ले।

शामो, लाजो रोटी के टुकड़े ले लेती हैं, किन्तु सन्तिया खड़ी रहती है, आगे नहीं बढ़ती।

शानू : अरी ले, दूर क्यों खड़ी है?

सन्तिया : अब मैं बड़ी हो गयी। बच्चों को ही दे दे न!

शानू : और ले, तू बड़ी हो गयी। कब से रे? हरामखोर! लेती क्यों नहीं?

सन्तिया आगे बढ़कर रोटी का टुकड़ा ले लेती है।

सन्तिया : सूख गयी रोटी, भय्या!

शानू : लो और सुनो महारानी की बात! सूखी ना होती, तो तुझे तो रोटी ही मिलती।

सन्तिया झुग्गी में चली जाती है। चारों बच्चे भी इधर-उधर खिसक जाते हैं। सल्लो का प्रवेश। हाथ में थैला है। थैले में से कुछ निकालकर रखती है।

शानू : क्या ले आयी रे?

सल्लो : अरे, और का लाती? तुझे तो कुछ चिन्ता है नहीं घर की। थोड़ा-सा मकी का, चने का और गेहूँ का मिला आटा है। सुबह को रोटियाँ सेंक दूँगी बच्चों के लिए।

शानू : और शाम की छुट्टी?

सल्लो : धरी तो है डिब्बे में रोटियाँ। दो तेरी, एक माँ की, एक सन्तिया की, चार चारों बच्चों की और एक मेरी।

शानू : कुल नौ रोटियाँ? खानेवाले आठ! **(थोड़ा रुककर)** अपन का तो बिजनस आज फेल हो गया री, सल्लो!

सल्लो : फेल हो गया?

शानू : हाँ और क्या?

सल्लो : कैसे?

शानू : देख ले तू ही। एक परस हाथ लगा, तो खाली और जंजीर निकली लिली गोल्ड की। साले कितने होशियार हो गये हैं आज के लोग! सोने के दाम क्या चढ़े कि लोगों ने···

सल्लो : नकली सोना पहनना शुरू कर दिया। पर सुन, इसलिए नई, इसलिए शुरू किया कि तुझ जैसे जेबकतरों का डर जो है।

शानू : ए सल्लो! जवान सँभाल कर बोला कर। साली···हरामजादी······छिनाल कहीं की!

सल्लो : गाली बकनी खूब आती है, तुझे रे ! मैंने क्या गलत कह दिया कि तुझे छींक लग गया ?

शानू : क्या करूँ सल्लो ? कोई रोजगार नही है न, इसीलिए ये धन्धा करना पड़ता है । अब की नौकरी मिले तो सच···

सल्लो : अजी तुझ जैसे आदमी का कौन भरोसा ?

शानू सल्लो की धोती पकड़कर खींचता है । धोती फट जाती है ।

शानू : हाय राम ! तेरी धोती फट गयी, अब क्या पहनेगी ? दूसरी तो है भी नईं······

सल्लो : और क्या करेगा तू ? करने का न धरने का । ले बोल, अब मैं क्या पहनूं ? अरी सन्तिया ! सुनियो बीवी, जरा हमार पिटरिया में से सुई-धागा ले आ ।

सन्तिया का सुई-धागे के साथ प्रवेश ।

सन्तिया : ला भाभी ! मैं सी दूँ, क्या सीवै है ?

सल्लो : ले तू सीं दे बोब्बो ! (फटा धोती का टुकड़ा आगे कर देती है ।)

सन्तिया सल्लो की फटी धोती सींती है । शानू बैठ जाता है । अपने झोले में से डबलरोटी का सूखा टुकड़ा निकालकर सल्लो को देता है ।

शानू : ले तेरे लिए धर रक्खा था हरामी बच्चों से छुपाकर । साले देख लेते तो छोड़ते थोड़ी ।

सल्लो : अरे बच्चों को ही दे देता । मैं क्या दुबली हुई जा रही हूँ इसके बिना ।

डबलरोटी का टुकड़ा ले लेती है, खाती है ।

सल्लो : (खाते-खाते) अरे, तेरे झोले में और क्या है, दिखा तो सई ।

शानू : (झोले को छिपाता है) अरे, कुछ भी नईं ।

सल्लो : (बढ़कर झोला छीन लेती है, झोले में से सस्ती शराब की बोतल निकालकर) बोल यो का है ?

शानू : तेरी कसम, सल्लो ! यह मेरी नहीं है । यह तो ससुर बकरीदी ले आया रहा ।

सल्लो : ला मैं इसे ठिकाने लगा दूँ । खाने को रोटी नहीं मिलती । इसे सराब रोज चहिये । (शराब की बोतल फेंकने को होती है ।)

शानू : (सल्लो के हाथ से बोतल छीनकर) अरी छोड़ भी ! कह

रया हूँ मेरी बोतल नई है। अजीब औरत है। यकीन तो करती ही नईं। ओ सन्तिया, सुन वड़ी ठण्ड है। ससुर हवा किसी तेज चल रही है। हड्डियाँ फोड़े डालें है। सर भी वड़ा दुखें है री! जरा रामजी की दुकान से एक चाय ला दे।

सल्लो फेंकता है सन्तिया की ओर।

सन्तिया : (सिलाई छोड़कर) दूध लियाऊँ ? पत्ती है थोड़ी-सी। माँ भी चाय माँगती थी। बसन्ता की घरवाली रोटी पका रई है। वहीं वना लाऊँगी। गुड़ भी जरा सा धरा है।

जाती है।

सल्लो : जवान सन्तिया को अकेले-दुकेले न भेजा कर। मैं तुझसे कई वार कह चुकी हूँ, पर एक तू है कि तेरी अकल पर पत्थर पड़ गये।

शानू : अरे ले, सन्तिया काम नहीं करेगी तो कौन करेगा ?

सल्लो : तू जानता है, किसनू इसके पीछे लग जाता है, इसे छेड़ता है!

शानू : किसनू छेड़ता है ? साले किसनू का सिर न काट कर फेंक दूँगा। कोई वात है ? नाली का कीड़ा साला !

सल्लो : नाली का कीड़ा किसनू है ? और तू............सराब तू पियें, जुआ तू खेलें, चोरी तू करें, जेब तू काटें, छोकरियों को तू छेड़ें।

शानू : ना, सल्लो ! ऐसी वात मत कह। जब से तू घरवाली वनी, किसी छोकरी को नई छेड़ा, राम कसम ! (कुछ रुककर) तू कहती तो ठीक है। मैं भी नाली का कीड़ा......... हूँ.........सचमुच कीड़ा हूँ.........गन्दा कीड़ा......... तभी तो सव मुझसे घिरना करते हैं। माँ, बच्चे, सन्तिया, और तू भी तो.........

सल्लो : (थोड़ी नर्म होकर) अच्छा, अच्छा, छोड़। किसनू से सन्तिया की सादी कर दे।

शानू : किसनू से सन्तिया की सादी ? करेगा किसनू सन्तिया से सादी ?

सन्तिया तीन हैण्डिल टूटे मग्गों में चाय लाती है। सबको एक-एक मग्गा देती है।

शानू : (सन्तिया से) क्यों री सन्तिया ! सादी करेगी किसनू से...

सन्तिया लजाती है, झुग्गी की ओर चली जाती है।

सल्लो : सन्तिया से क्या पूछता है ? सन्तिया को ही तो छेड़ता है, किसनू । वह सन्तिया से मोहब्बत करता है ।

ज्ञानू : मैं आज ही साले किसनू से बात करूँगा । अभी जाता हूँ ।

सल्लो : तू तो हवाई घोड़े पर सवार रहै सदा ! इतनी उतावली की बात क्या है ! कल बात कर लीजो ।

ज्ञानू : अरी, सुभ काम में देरी नई करनी चाहिये ।

चाय का खाली मग्गा सल्लो के पास रख देता है, और तीव्र गति से चला जाता है ।

सल्लो : हाय मेरे राम ! इसके दीमाग में तो बड़ी जल्दी है ।

गातो और चम्पो का प्रवेश ।

गातो : *अरी सल्लो ! गजब हो गया ! रात ठण्ड में जैकिसन ऐंठ गया, मर गया बेचारा !*

सल्लो : अरे राम राम ! बड़ा गजब हो गया यू तो !

चम्पो : अभी गर्मियों में तो ब्याह करके लाया था ।

गातो : बेचारी परबतिया बीस बरस की होगी बस !

सन्तिया झुग्गी से निकलकर आती है ।

सन्तिया : जैकिसन को तो मैंने परसों ही देखा था । परबतिया के साथ धूप में बैठा हँस रया था ।

गातो : अरी जिन्दगी का का भरोसा ?

चम्पो : *और फिर हम जैसे लोगों की जिन्दगी*··· ।

सन्तिया : *जाड़ों का यह मौसम बड़ा जल्लाद है हमारे लिए । हर* साल दो-चार भेंट ले लेता है ।

सल्लो : पिछले बरस सरबतिया मर गयी थी ।

गातो : एक सरबतिया क्या ? फुलमतिया, बनारसी, सब जाड़ों में ठण्ड खाकर ही मरे हैं ।

चम्पो : अरी गर्मी आवै तो लू चलै । आदमी लू खा जावै तो भी बचना मुस्किल ।

सन्तिया : *बरसात में झुग्गियाँ गिर जावें हैं । यहाँ-वहाँ दौड़ते फिरो ।* ऐसे जीने से तो मौत भली ।

सल्लो : बरसाती कीड़ों का डर क्या कम रहवै है ।

गातो : पास के खेतों से रेंगते हुए साँप आ जावें झुग्गियों में ।

सल्लो : सन्तिया ! मैं तो परबतिया के पास जाऊँ हूँ । तू यहीं रहियो ।

गातो : चल, मैं भी चलूँ हूँ ।

चम्पो : *हाँ, हाँ, तीनों जनी चलेंगी । जरा मुँह में तो एक घूँट पानी*

डाल लूं।

चम्पो बीच वाली झुग्गी में चली जाती है। गातो बायीं ओर की झुग्गी में प्रवेश करती है। सल्लो उठती है, अंगड़ाई लेती है।

चारों बच्चों का प्रवेश।

कन्नू : (चाय के खाली मग्गों को देखकर) मैं भी चाय लूंगा, मां !

सल्लो : बच्चे चाय नही पीते, बेटा !

लाजो : भूख लगी है, मां !

सल्लो और सन्तिया झुग्गी में जाती हैं। सन्तिया झुग्गी के अन्दर से रोटी का डिब्बा लाती है और सबको एक-एक रोटी देती है। सब बच्चे खाने लगते हैं।

सन्तिया : (मां के पास जाकर जोर से) ले मां ! तू भी रोटी खा ले।

मां : अरी, पहले सहारा दे दे, मोरी पै जाऊंगी पहले···

सन्तिया बुढ़िया मां को सहारा देकर उठाती है। मां हांफ-हांफ कर सन्तिया का सहारा लेकर रुक-रुक कर चलती है। बैठ जाती है एक कदम चलकर। सन्तिया उठाती है, बुढ़िया फिर चलती है।

मां : भगवान् भी छांट-छांट कर लेवै है। मरी मुझकू ही मौत ना आती।

सन्तिया : (जोर से) ओ मां ! ऐसा मत बोल। तू नहीं जानती तेरा कितना······

मां : अरी सबको दुख दे रई हूं मैं।

सन्तिया के सहारे मां बायीं ओर की झुग्गी के पीछे चली जाती है।

शामो : ओरी लाजो ! (डिब्बे की रोटी की ओर संकेत करके) लेगी यह रोटी ?

लाजो : (रोटी गिनती है) एक···दो···तीन···

मण्टू : दो रोटी बप्पा की हैं और एक दादी की। तू क्यों लेती है री शामो !

शामो : भूख बड़ी जोर की लगी है रे !

सब बच्चे सारी रोटियां खा जाते हैं।

कन्नू : पानी दे री, लाजो !

लाजो : है ना बड़ा नबाब ! पानी भी लेकर नईं पी सकता ?

मण्टू : तू ही दे देगी तो क्या बिगड़ जायगा ?

शामो : हम क्यूं देवें ? तेरे हाथ क्या पीछे को लगे हैं ?

कन्नू : बेसरम कहीं की !······

लाजो : बेसरम कहेगा, बोल ? (धप्प जमाती है कन्नू के)

चारों बच्चे आपस में गुंथ जाते हैं। मार-पीट होने लगती है।

झुग्गी में से सल्लो का प्रवेश।

सल्लो : अरे मरो ! क्यों लड़ रहे हो ? एक-दूसरे को देख नहीं सकते, कमबखत कहीं के !

सल्लो एक-एक चांटा सबको रसीद कर देती है। बच्चे गाली देते हैं।

बच्चे : (एक साथ सल्लो को) साली···हराम···मारती है हमें।

सल्लो : मुझे गाली देते हो ! माँ को गाली ?

मारने को दौड़ती है, बच्चे भाग जाते हैं।

सन्नू, बन्नू का प्रवेश।

सन्नू : अरी सल्लो ! गजब हो गया ! राम···राम !···

सल्लो : (घबरा कर) क्यों क्या हुआ रे ?

बन्नू : शानू ने किसनू को मार डाला।

सल्लो : हाय राम ! हाय, मै क्या करूं ? अरे, ये कैसे हुआ रे ?

सन्नू : शानू किसनू से कह रहा था कि सन्तिया से सादी कर ले।

सल्लो : (रोती है)।

बन्नू : किसनू ने साफ़ मना कर दिया कि ऐसी लड़की से सादी कैसे करेगा, जो सड़कों पै आवारा घूमै है, जिसके घरवाले दहेज नाही दे सकै हैं !

सन्नू : शानू ने गुस्से में किसनू के सिर पर लाठी मार दी···यह कहते हुए···

बन्नू : साला मोहब्बत करेगा सन्तिया से और सादी करेगा जो साथ में दहेज लायगी।

सन्नू : और किसनू वहीं ढेर हो गया।

सन्तिया का दौड़ते हुए प्रवेश।

सन्तिया : भाभी, यह क्या कर डाला भय्या ने ?

सल्लो : (रोती है) उसके सिर पर खून सवार हो गया। उसने किसनू को मार डाला। तेरे किसनू को, सन्तिया ! तेरा किसनू तुझसे मोहब्बत नईं करता था। तुझसे सादी करने को उसने मना कर दिया। इसीलिए···।

सन्तिया : भय्या ने किसनू को मार डाला··(रोती है) अच्छा ही किया

भय्या ने। किसनू झूठा था। मक्कार था। मेरी अस्मत से खेलना चाहता था। लुटेरा कहीं का! भय्या ने बहुत अच्छा किया। किसनू गुण्डा था···किसनू गुण्डा था··· भय्या नईं मारते तो मैं···मार देती···उसे। किसनू झूठा था···साला हराम···खोर!

गातो चम्पो झुग्गी से निकल आती हैं।

चारों बच्चों का भी प्रवेश।

दामो : माँ, बप्पा ने किसनू को मार डाला।

लाजो : पुलिस बप्पा को पकड़कर ला रही है।

कन्नू : उसके हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हैं।

मण्टू : पुलिस उसे जेल ले जायगी।

सन्तिया : ज्ञानू भय्या को फाँसी हो जायगी। ज्ञानू भय्या अब हम लोगों के बीच में नहीं आयेगा (रोती है)।

सल्लो : (सुबकती है) अब हमारा कोई नईं रया (रोती है)।

सन्तिया : रो मत भाभी, रो मत! भय्या ने बहुत अच्छा किया। किसनू गुण्डा था···कहता था सन्तिया तू मेरी औरत बन जा। मैं तुझे गहना बनाऊँगा, तुझे साड़ी लाकर दूँगा। मक्कार कहीं का! अपने किये का फल पा गया।

बायीं ओर की झुग्गी के पीछे से माँ का घिसटते हुए प्रवेश।

माँ : अरे मेरे ज्ञानू को छोड़ दो। मेरे ज्ञानू को छोड़ दो रे!

पुलिस के दो सिपाही ज्ञानू के हाथों में हथकड़ियाँ डालकर लाते हैं झुग्गी के आगे से।

सल्लो : अरे मेरे मनई को छोड़ दो, उसने कुछ नईं किया···कुछ नईं किया।

दौड़कर ज्ञानू के पाँव पकड़ लेती है। सन्तिया ज्ञानू के पास आ जाती है, बच्चे भी। घिसट-घिसट कर माँ भी वहीं आ जाती है। सन्तू, बन्तू, गातो, चम्पो भी पास आ जाते है। सिपाही सब पर डण्डा चलाता है।

सिपाही नं० १ : हटो, हटो, हरामियों! यह खूनी है।

सिपाही नं० २ : इसने बेकसूर किसनू का खून किया है।

सब सिसकते हैं।

सिपाही नं० १ : इसे फाँसी हो जायगी।

सिपाही नं० २ : इसका गुनाह बहुत बड़ा है।

सब लोग रोते हैं।

पर्दा गिरता है। पर्दा गिरने पर वही सड़क दिखायी देती है। लोग वैसे ही आ-जा रहे हैं। पृष्ठभूमि से धीरे-धीरे वही बुलन्द आवाज उभरती है।

आपने देख लिया न! मेरा घर, मेरे बच्चे। मैं जा रहा हूँ। मेरी दो रोटियाँ अब मेरे बच्चे खा सकेंगे। आप कैसी नज़रों से मुझे देख रहे हैं? आप भी मुझे बुरा समझने लगे है। पर मैं सचमुच बुरा नहीं हूँ। किसनू जैसे आदमी से मैं चिढ़ता हूँ। साला कहीं का, कमीन··· ! मैंने उसे मार डाला···मार डाला···मुझे फाँसी हो जायगी अब, पर मेरी माँ को अब कौन दवा लाकर देगा? मर जायगी मेरी माँ··· मर जाएगी। सन्तिया से कोई ब्याह नहीं करेगा। सल्लो ···बेचारी सल्लो···अब कहाँ जायेगी?···मैं जा रहा हूँ··· मुझे इतनी घृणा भरी नज़रों से आप क्यों देख रहे हैं? सचमुच मैं बुरा आदमी नहीं हूँ।

मुझे बुरा बना दिया आपने, समाज ने, मेरी ग़रीबी ने। सच दुनिया का सबसे बड़ा पाप है—ग़रीब होना। मुझे माफ़ कर देना। यह मेरी आवाज थी—मेरे अन्दर की आवाज थी, जो आप सुन रहे थे। मैं जा रहा हूँ। अलविदा, मेरे दोस्तों!



८

ओ रे ओ सहयात्री !

पात्र

सुजाता — एक नवयुवती, किसी डिग्री कॉलिज में प्रवक्ता

लज्जा — सुजाता की समवयस्का सखी

शम्भू — सुजाता का नौकर (अवस्था ५० वर्ष)

सावित्री — सुजाता की माँ (अवस्था ४५ वर्ष)

निर्मल — सुजाता का पति

[स्थान—सुजाता का ड्राइंग रूम। सामने दायीं ओर एक खिड़की है, जो सड़क की ओर खुलती है। खिड़की में हरे रंग का पर्दा लगा है। सामने की दीवार पर बीच में एक बड़ा चित्र टँगा है। इधर-उधर दो छोटे चित्र हैं। बीच में सोफ़ा सेट है। सोफ़ा सेट के बराबर में दो साइड टेबिल्स और बीच में एक लम्बी मेज़ है। बाहर जाने का रास्ता बायीं ओर है और दायीं ओर से घर के आँगन में प्रवेश होता है। सोफ़े के बराबर की दायीं ओर वाली साइड टेबिल पर फ़ोन रखा है। पास ही एक ईज़ल पर अधूरी पेण्टिंग लगी है। एक ऊँची टेबिल पर रंग खुले रखे हैं।

समय—प्रातःकाल १० के लगभग।

पर्दा खुलता है। स्टेज खाली है। फ़ोन की घण्टी लगातार बज रही है।

सुजाता का शीघ्रता से प्रवेश। सुजाता की आकृति आकर्षक है। उसकी वेशभूषा सुरुचिपूर्ण है। लगता है वह कहीं जाने को तैयार है। सुजाता फ़ोन उठाती है।]

सुजाता : (फ़ोन पर) हलो ७३७१६···सुजाता स्पीकिंग। (कुछ रुककर) अरे लज्जा! तू? कब लौटी लन्दन से? कैसी है? (कुछ रुककर) आ रही है न? कम-से-कम एक खत तो लिख देती, मैं पालम पहुँच जाती।······हूँ···हूँ··· नहीं, मैं नहीं सुनती तेरी बातें। तू आ यहाँ, तभी बातें होंगी।

सावित्री का प्रवेश।

सावित्री : किसका फ़ोन था, बेटी?

सुजाता : लज्जा का। लन्दन से आज ही आई है, सुबह चार बजे।

सावित्री : अच्छा हुआ, लज्जा आ गयी। तू अकेली बोर होती थी। अब तेरा मन लगा रहेगा। (कुछ रुककर) बेटी! मैं काली बाड़ी हो आऊँ जरा। अखण्ड कीर्तन हो रहा है वहाँ कल से।

सुजाता : हो आओ, माँ! पर जल्दी लौटना। लज्जा आती होगी।

सोफ़े पर आकर बैठ जाती है, और अखबार की सुर्खियाँ देखती है। फिर अधूरी तस्वीर में रंग भरने लगती है।

सावित्री : हाँ २०–२५ मिनट में ही आ जाऊँगी (अन्दर से चादर लाती है, ओढ़कर फिर बायें दरवाज़े से बाहर निकल जाती है। एक मिनट बाद ही फिर लौट आती है।)

सावित्री : देखियो सुजाता! किसका ख़त आया है?

सुजाता ख़त लेती है, पहले हैण्डराईटिंग को ग़ौर से देखती है, फिर खोलकर पढ़ती है।

सावित्री : किसका ख़त है, बेटी?

सुजाता : उन्हीं महाराज का, माँ!

सावित्री : क्या निर्मल का ख़त है? (उत्सुकता से) क्या लिखा है?

सुजाता : पढ़ने दो, माँ! लम्बा ख़त है।

सावित्री लाचार-सी सोफ़े पर बैठती है।

सुजाता : ११ बजे तशरीफ़ ला रहे हैं जनाब आज, माँ!

सावित्री : (खुश होकर) निर्मल आ रहा है? (फिर अचानक धीमे स्वर में) इस बार झगड़ा मत करियो, बेटी! पति आख़िर पति ही है! जाने कब क्या कर बैठे? हम औरतों को थोड़ा झुकना ही चाहिये।

सुजाता : मुझे उपदेश मत दो, माँ! मुझे क्या करना है, मैं जानती हूँ। निर्मल को वापिस लौटना होगा। अब कोई जगह यहाँ बाक़ी नहीं है निर्मल के लिए।

सावित्री : (समझाते हुए) ना, बेटी! ऐसा मत कह। औरत के लिए यह दर्प—यह अभिमान ठीक नहीं।

सावित्री का अन्दर प्रस्थान। बायें द्वार से शम्भू का प्रवेश। हाथ में सब्ज़ियों से भरी टोकरी है।

शम्भू : (सुजाता से) आज क्या बनाऊँ, बेटी? शिमला मिर्च हैं, कटहल, आलू, प्याज, टमाटर और लौकी।

सुजाता : आज उर्द की दाल बनाना, दादा! कटहल के कोफ़्ते, शिमला मिर्च भरवाँ,…और बासमती चावल की खीर…।

शम्भू : पर…पर तुम्हें तो उर्द की दाल अच्छी नहीं लगती।…जब

कहती ही हो तो बनाऊँगा।

अन्दर की ओर प्रस्थान।

सुजाता : मैंने शम्भू दादा से उर्द की दाल बनाने को कहा है। उर्द की दाल निर्मल को बहुत अच्छी लगती है। नहीं······ उर्द की दाल नहीं बनेगी······शम्भू दादा·········शम्भू दादा······उर्द की दाल मत बनाना। मूंग की दाल बनाना।

शम्भू का प्रवेश।

शम्भू : क्या कहती हो, बिटिया ? मूंग की दाल ? (हँसता है) तुम कुछ मत कहो, मैं खुद बना लूँगा। यह मेरा सरदर्द है, अब !

शम्भू का प्रस्थान।

सुजाता खड़ी होती है। खिड़की की ओर बढ़ती है। खिड़की का पर्दा एक ओर खिसका देती है। थोड़ी देर खिड़की से बाहर की ओर झांकती है, फिर अधूरी तस्वीर बनाने में लग जाती है। तस्वीर में उसका ध्यान नहीं लगता, तो फिर सोफ़े पर आकर बैठ जाती है। अख़बार उठाती है। ज़ोर से अख़बार मेज पर पटक देती है। निर्मल का ख़त उठाती है, ज़ोर-ज़ोर से पढ़ती है, कुछ रुक-रुककर।

सुजाता : "हम लोग······अपने······अपने······अभिमानों में दरख्त के ठूंठ-से अलग-अलग खड़े हुए हैं, सुजाता ! अजनबी-से, जैसे एक-दूसरे को जानते ही न हों। मुझे लगता है तुम्हारे शब्द-कोश में 'क्षमा' शब्द है ही नहीं। सुबह का भूला यदि साँझ को घर लौट आये, तो उसे भूला नहीं कहते, पर··· पर···तुम भूले पथिक को घर लौटने ही नहीं देतीं। ऐसी निर्मम मत बनो, सुजाता ! तुम्हारी जिन्दगी को मैंने उजाड़ने का पाप किया था, अफ़सोस है, पर उसके लिए इतनी बड़ी सजा मुझे मत दो। बहुत सजा भोगी है, मैंने सुजाता ! आशा है मुझे तुम माफ़ कर दोगी। दर्प की इन दीवारों को तोड़ दो, तोड़ दो, सुजाता !"

पत्र रख देती है, खड़ी हो जाती है। इधर-उधर घूमती है।

सुजाता : दर्प की दीवारों को तोड़ दूं ? अपने······अपने अभिमानों में दरख्त के ठूंठ-से हम·········अलग-अलग खड़े हुए हैं। नहीं······नहीं, निर्मल ! ······तुम यहाँ आने का दुस्साहस कैसे कर रहे हो ? तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम इन्सान नहीं

हो……हैवान हो……हैवान……

तेजी से बाहर की ओर प्रस्थान। एक मिनट स्टेज खाली रहता है। सावित्री का प्रवेश। पीछे-पीछे शम्भू आता है। सावित्री सोफ़े पर बैठ जाती है।

सावित्री : शम्भू दादा ! क्या होगा ? मेरा मन कांप रहा है। आखिर निर्मल कितना झुकेगा ? यह लड़की तो……(इधर-उधर देखकर) कहाँ चली गयी ? अपने आप लौट आयेगी। शायद बाजार चली गयी है।

शम्भू : बड़ी गहरी चोट बिटिया के मन पर लगी है, मलकिन ! क्या कमी रही हमार बिटिया में, जो निर्मल बाबू उस कुलच्छनी डाक्टरनी के पीछे चल दिहिन। हमार बिटिया उससे लाख दर्जे सुन्दर और गुनवन्ती रहिन।

सावित्री : मर्द का मन तो भौरा होता है, शम्भू दादा ! स्त्री बेचारी क्या करे ? उसे तो सहना पड़ता है। कितने प्यार से लड़की को माँ-बाप पालते हैं ! कैसे लाड़ से ब्याह रचाते हैं अपनी लाड़ली का, पर भविष्य में क्या लिखा है कौन जानता है ?

शम्भू : मालिक तो लड़कों से बढ़कर बिटिया को मानत रहे, क्या हम देखित नाही रहिन।

सावित्री : आज लगता है, शम्भू दादा ! अच्छा हुआ वे समय से पहले ही चले गये। आज होते तो क्या देख पाते इतना बड़ा दुख ? (स्वर भारी हो जाता है) मेरे ही पिछले पापों का फल मेरी बेटी भुगत रही है। अब तो ऐसा लगता है… (ऊपर देखकर) हाय भगवान् ! यह क्या किया तूने ?

शम्भू : जी न दुखाओ मलकिन ! भगवान् सबका है। बारह बरस बाद तो कूड़ी के भाग भी जाग जावें। हम तो आदमी हैं। अच्छा हम जात हैं।

अन्दर की ओर प्रस्थान।

लज्जा का प्रवेश। लज्जा एक सुन्दर युवती है, वेश-भूषा से आधुनिक लगती है।

सावित्री : (खड़ी होकर) आओ बेटी लज्जा ! कैसी हो गयी है अरे तू ! पहचानी भी नहीं जाती।

लज्जा : (माँ के पाँव छू कर) मोटी हो गयी हूँ न, माँ !

सावित्री : धत् पगली ! ऐसे थोड़े ही कहते है।

लज्जा का हाथ पकड़कर सोफ़े पर लाकर बैठाती है।

लज्जा : सुजाता कहाँ है ? मैंने तो फ़ोन कर दिया था।

सावित्री : आती ही होगी। बाज़ार तक गयी है। कुछ सामान खरीदना है उसे। निर्मल आनेवाले हैं।

लज्जा : यह क्या हुआ, माँ ? निर्मल बाबू और सुजाता तो दोनों ही एक-दूसरे को पसन्द थे। दोनों की इच्छा से ब्याह हुआ था। दोनों साथ-साथ पढ़ते थे, तभी से·········

सावित्री : सब क़िस्मत के खेल हैं, बेटी ! और फिर सुजाता भी तो नहीं मानती। निर्मल आ रहे हैं, तो यह नादान लड़की अपना अलग दर्प लिये बैठी है। (कुछ रुककर) अरे, तू क्या अकेली आयी है ? बच्चे और भुवन बाबू कहाँ हैं ?

लज्जा : वे इस बार नहीं आये। मेरा मन उचट रहा था, अकेली ही आ गयी।

सावित्री : मन तो उचटता ही है। पराया देश, पराये लोग। कभी-कभी तो अपनों की याद आती ही है।

लज्जा : सुजाता के लिए मेरा मन बहुत तड़पता है, माँ ! बेचारी ······लड़की ! किस जन्म के पापों का फल भोगना पड़ रहा है उसे ?

सावित्री : क्या करें, बेटी ? लाचारी है यहाँ तो।

सुजाता का प्रवेश। पीछे-पीछे रिक्शावाला हाथ में फलों के थैले, छः कोकाकोला की बोतलें लेकर आता है। सावित्री उठती है, रिक्शेवाले से सब सामान लेकर मेज़ पर रखती है। सुजाता दौड़कर लज्जा से चिपट जाती है।

सुजाता : आ गयी तू ! मैंने सोचा कुछ खरीद लाऊँ ! तू आ रही है। दोनों साथ बैठकर कोकाकोला पियेंगे।

लज्जा : अरे भाई, मैं तो ठण्डा लेती ही नहीं, गला खराब हो जाता है। कॉफ़ी लूँगी।

सुजाता : (सावित्री से) माँ ! दो कप कॉफ़ी शम्भू दादा से बनवाकर भिजवा दो।

सावित्री का प्रस्थान। दोनों सहेलियाँ पास-पास बैठ जाती हैं। रिक्शावाला खड़ा रहता है।

रिक्शावाला : बीबी जी !·········

सुजाता : अरे मैं तो तुझे पैसे देना भूल ही गयी। हाँ कितने पैसे देने हैं ? एक रुपया न ?

रुपया निकालकर देती है। रिक्शावाला सलाम

करके चला जाता है। सुजाता फिर लज्जा के पास आकर बैठ जाती है। दोनों कुछ देर चुप रहती हैं।

लज्जा : यह क्या कर डाला अपनी हैल्थ का, सुजाता? कैसी हो गयी है तू गम्भीर-गम्भीर-सी? कल की चहकती बुलबुल आज एकाएक खामोश कैसे हो गयी इतनी?

सुजाता : लुट गया आशियाँ, निशाँ बाक़ी है।

शम्भू का प्रवेश। ट्रे से दो कप कॉफ़ी निकालकर सुजाता और लज्जा की ओर बढ़ाता है और नाश्ते की प्लेटें मेज पर रख देता है।

शम्भू : (लज्जा से) कैसी हो लज्जा बिटिया? हम सब लोग तो तुम्हें बहुत याद करत रहिन।

लज्जा : अच्छी हूँ, शम्भू दादा! बड़ी जल्दी कॉफ़ी बन गई?

शम्भू : अरे, हम पहले से ही काफी फेंटत रहिन तोहार खातिर। हम जानत हैं कि तू ठण्डा नाहीं पियब।

शम्भू का प्रस्थान। दोनों सहेलियाँ कॉफ़ी सिप करती हैं। सुजाता बिस्कुट की प्लेट लज्जा की ओर बढ़ाती है। लज्जा एक बिस्कुट उठाती है।

सुजाता : शम्भू दादा कॉफ़ी अच्छी बनाते हैं।

लज्जा : हाँ बहुत अच्छी बनी है कॉफी। अच्छा यह तो बता ऐसे कब तक चलेगा? अब जब निर्मल बाबू लौट रहे हैं, तो तू अपने अभिमान में चूर है, माँ कह रही थी। ऐसा न कर, सुजाता!

सुजाता : क्या करूँ, लज्जा? मैं निर्मल को भूलना चाहती हूँ। उसके द्वारा बनायी गयी अतीत की हर तस्वीर को मिटा डालना चाहती हूँ। पर······पर······मेरा अन्तर्मन······कितनी लाचार हूँ लज्जा, मैं? मेरा अन्तर्मन जितना ही निर्मल की ओर झुकता है, बाह्य उतना ही नफ़रत की आग में सुलगने लगता है।

लज्जा : तेरी स्थिति स्वाभाविक है। पुरुष औरत को माटी की मूरत बनाकर आले में सजाकर रख देना चाहता है और भूल जाता है कि इस पत्थर की मूरत के पास भी दिल है··· दिल में अछूते प्यार की भूख है······निर्मल बाबू ने जो कुछ किया, बहुत बुरा किया, पर तू······अब···।

सुजाता : मान छोड़ दे। यही न? नहीं, नहीं, मुझसे यह नहीं होगा। मैं निर्मल से घृणा करती हूँ······घृणा करती हूँ।

लज्जा : यह नैचुरल स्टेट नहीं है तेरी, सुजाता ! तू निर्मल को नहीं भूल सकती······नहीं भूल सकती ।

सुजाता : मैं निर्मल को भुला दूंगी, उसकी हर निशानी को मिटा डालूँगी······यादों का एक एक दाग़···।

लज्जा : यह तू नहीं बोल रही······तेरा दर्प बोल रहा है, सुजाता !

सुजाता सुबकती है, मुँह छिपाकर अन्दर चली जाती है । तभी एक छोटी अटैची लिये निर्मल का प्रवेश । लज्जा की पीठ बायीं ओर है । वह देख नहीं पाती । निर्मल स्तम्भित-सा खड़ा रहता है, अटैची धीरे-से रख देता है । सुजाता कुछ अस्त-व्यस्त मुद्रा में दायीं ओर से प्रवेश करती है ।

निर्मल : सुजाता ! मैं आ गया हूँ ।

सुजाता : सो तो देख रही हूँ । तशरीफ़ रखिये ।

लज्जा खड़ी हो जाती है ।

लज्जा : बहुत दिनों बाद मिल रहे हैं, निर्मल बाबू ! पहचाना आपने ? मैं लज्जा हूँ ।

निर्मल : ओह लज्जा जी ! आप तो लन्दन थीं ।

लज्जा : हाँ आज ही लौटी हूँ । आज शाम को आप दोनों मेरे घर आ रहे हैं ५ बजे । मैं आपका इन्तजार करूंगी । जरूर ······जरूर आना है ।

निर्मल : (सुजाता की ओर देखता है ।)

सुजाता : नहीं लज्जा ! इन्तजार न करना । पर तुम कुछ देर रुको तो । खाना खाकर जाना । अभी तो कुछ बातें भी नहीं कीं ।

लज्जा : नहीं,···नहीं, मैं इन्तजार करूंगी । तुम दोनों को आना है । वहीं बातें होंगी ।

लज्जा का बाहर की ओर प्रस्थान । सुजाता किंकर्तव्य-विमूढ़-सी खड़ी रहती है । निर्मल विस्फारित नेत्रों से सुजाता को देखता रहता है ।

निर्मल : बैठो सुजाता !

सुजाता : आप बैठिये । माँ को आपके पास भेजती हूँ ।

सुजाता का द्रुतगति से प्रस्थान । सावित्री का प्रवेश । पीछे-पीछे शम्भू एक बड़ी प्लेट में सेब, आम और केले, तथा छुरी व कोकाकोला की दो बोतलें लेकर आता है और मेज पर रख देता है ।

निर्मल : (सावित्री को देखकर खड़ा होता है और हाथ जोड़कर) प्रणाम माँ ! और शम्भू दा, आपको भी।

शम्भू और सावित्री : (एक साथ) जीते रहो। बैठो बेटा !

निर्मल : शम्भू दा ! सुजाता को भेज दो।

शम्भू : (जाते-जाते) बेटी सुजाता अपने हाथों से तुम्हारी पसन्द की ये चीज़ें लायी है।

शम्भू का प्रस्थान।

सावित्री : कैसे हो बेटा ?

निर्मल : (फीकी हँसी हँसकर) ठीक हूँ, माँ ! मुझे आपने माफ़ कर दिया होगा। मुझे सचमुच अपने किये पर बड़ा अफ़सोस है। जिस सोने को पीतल समझकर में उपेक्षा करता रहा, वह तो असली था और पीतल पर पालिश की हुई चमक के पीछे में दौड़ता रहा। आज मेरी आँखों के ऊपर जो पर्दा पड़ा हुआ था, वह हट गया है, माँ !

सावित्री : बेटी वालों की समाज में बड़ी खराब दशा है, बेटे ! बेटी को घर मे रक्खो तो चूहे खाते हैं, बाहर भेजो तो कुत्ते नोचते हैं। तुमने मणि को नाली में फेंक दिया और कांच के मोतियों की माला पिरोते रहे। तुमने बहुत बड़ा अनर्थ कर डाला, बेटा !

निर्मल : बस करो, माँ ! पिछले घावों को मत कुरेदो। रिसने लगेंगे तो नासूर बन जायेंगे।

सुजाता का प्रवेश।

सुजाता : और जिसके रिसते घाव नासूर बन चुके हैं, उसकी क्या दवा लाये है, आप ? (निर्मल के पास आकर कठोरता से) बोलिये······बोलते क्यों नही है आप ?

सावित्री : शान्त हो बेटी ! रोष मत कर।

सुजाता : रोष न करूँ ? मजबूरी और विवशताओं के उफनते हुए सैलाब में लावारिस भटकती छोड़ दिया गया मुझे और अब कहा जा रहा है रोष न करूँ ? ···नही···नहीं, आप जैसे आये है, वैसे ही लौट जाइये। आपके लिए यहाँ कोई जगह नही है·········

निर्मल : (शीश झुका लेता है।)

सावित्री : ऐसा मत कर, बेटी ! निर्मल को अपने किये पर बहुत अफ़सोस हो रहा है।

सुजाता : अफ़सोस हो रहा है आज ! (व्यंग से) मैडम डॉक्टर के

साथ रास रचाते अफ़सोस नहीं हुआ, मुझे राजरानी से भिखारिन बनाते अफ़सोस नहीं हुआ? वह दिन भूल गये, जब मैं आपके द्वार पर दस्तक देते-देते लौट आयी थी, पर आपके दरवाज़े बहरे हो गये थे मेरे लिए और आज आप मेरे घर में मेरी बिना इजाज़त के घुस आये हैं। बोलिये कैसा सलूक करूँ आपके साथ?

सुजाता का प्रस्थान।

सावित्री : उसकी कही बातों का बुरा मत मानना, बेटे! दहकते अंगार तो धीरे-धीरे ही बुझेंगे। जो आग तुम्हारी लगायी हुई है, उसे समय ही धीरे-धीरे ठण्डी करेगा।

निर्मल : (आँखों से आँसू पोंछता है) मेरे लिए क्या कहती हो, माँ?

सावित्री : निर्मल बेटे! सुजाता तुम्हें अब भी प्यार करती है। तुम्हारे लिए ही उसने उर्द की दाल बनाने को शम्भू दादा से कहा है। तुम्हारी पसन्द की चीज़ों की आज भी उसे पूरी-पूरी जानकारी है। कोकाकोला, सेब, आम······कटहल के कोफ़्ते, शिमला मिर्च, बासमती चावल की खीर······ धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा सुजाता का मन भी।

सावित्री का प्रस्थान।

निर्मल खड़ा होता है। सामने की दीवार में लगे चित्रों को गौर से निहारता है। ईज़ल पर लगी अधूरी तस्वीर को देखता है, और धीरे-धीरे उस तस्वीर को पूरी करने के लिए आगे बढ़ता है।

सुजाता का प्रवेश।

सुजाता : तो अधूरी तस्वीर को पूरी किया जा रहा है। इन तस्वीरों को देखकर भी क्या तुम्हें नहीं लगा कि अकेलेपन का अहसास······कितना बोझिल बना देता है इन्सान को··· तुम क्या जानो? तुमने अकेलापन भोगा हो, तब न!

निर्मल : भोगा है, सुजाता! बहुत भोगा है। जीवन की हर रात तुम्हारी यादों से भीगी है। हर सवेरा तुम्हारी कल्पनाओं से नम हुआ है। हर दोपहर तुम्हारे विरह से तपी है।

सुजाता : (व्यंग से) तो कविता करनी भी सीख ली है अब?

निर्मल : सीखी नहीं है, सिखा दी है तुमने।

सुजाता : (ज़ोर से) मुझे ये चापलूसी बिल्कुल पसन्द नहीं है, निर्मल बाबू! आप चले जाइये यहाँ से। मेरी शान्ति को भंग करने का अधिकार अब आपको नहीं रहा।

निर्मल : मुझे माफ़ करो, सुजाता ! मुझे गुमराह करनेवाली जड़ था—पैसा ! उस जड़ को मैंने जड़ से उखाड़कर फेंक दिया है। आज मेरे पास केवल दिल है, इन्सान का दिल। मेरी आँखें खुल गयी हैं।

सुजाता : और आपका हैवान दिल ? आप भी खूब हैं ! दिल न हुआ क्रिकेट की गेंद हो गया।···कभी हैवान तो कभी देवता··· कभी इन्सान तो कभी······

निर्मल : मेरी बेबसी का नाजायज़ फ़ायदा मत उठाओ, सुजाता ! अन्धेरों ने मुझे कितना गुमराह किया है ? कब से अन्धेरों से उजालों में आने के लिए मेरा मन भटक रहा है। कितनी बार···कितनी बार···तुम तक······आकर······

सुजाता : और बेचारे उजाले ही क़सूरवार हैं। उन्होंने आपको आगे नहीं बढ़ने दिया। दरवाज़े बन्द कर लिये। यही न ? (हँसती है) आप भी खूब हैं !

निर्मल : तुम्हारा दुःख बहुत बड़ा है, सुजाता ! तुम्हारे दुःख की कहानी इस कमरे की हर तस्वीर कह रही है। (किनारे की तस्वीर के पास जाकर) ये नदी का खामोश किनारा।······ किनारे पर बैठी एक स्त्री-आकृति······डूबता सूरज, झुकती साँझ······यह और कोई नहीं, तुम हो सुजाता········ तुम हो। (दूसरे किनारे की तस्वीर की ओर बढ़ता है।) यह···········अन्धेरी रात के आलम में यादों के दिये जलाये बैठी तुम हो, तुम·········सुजाता·········और यह बीच का बड़ा चित्र······

सुजाता : (हँसकर) बस करिये, महाशय ! आपके दिमाग का यह दिवालियापन अब भी नहीं गया। हर बरबाद तस्वीर की नायिका में आप मुझे ही टटोलने लगे हैं। यह भी खूब रही ! मेरी स्थिति के सबसे अच्छे व्याख्याता शायद आप ही हैं।

निर्मल : दर्प की दीवारों को तोड़ दो, सुजाता ! हम दोनों के बीच की ये दीवारें हम दोनों के बीच में खाई पैदा कर देंगी।

शम्भू का प्रवेश।

शम्भू : खाना मेज़ पर लग गया है, बिटिया ! दोनों आ जाओ।

शम्भू का प्रस्थान।

सुजाता : हाँ जाना तो है ही आपको। खाकर ही जायें। सुबह के भूखे हैं। कोकाकोला भी रखा ही रह गया। किसी ने खोल

कर भी नहीं दिया।

निर्मल कोकाकोला की बोतलें उठाकर खोलता है, सुजाता की ओर बढ़ाता है, पर सुजाता नहीं लेती।

सुजाता : समय-समय का फेर है। सेठ रतनचन्द्र का एकलौता दामाद अपने हाथ से बोतल खोलकर पी रहा है।

निर्मल : और कुछ बाक़ी हो तो वह भी कह लो, सुजाता! मैं सुनने के लिए तैयार हूँ।

सुजाता : (लाचार-सी कुर्सी पर बैठ जाती है) कभी आपने सोचा? कितने दुखों से दामन भरता गया है मेरा, और अब तो दामन इतना भारी हो गया है कि······

निर्मल : अपने दामन के दुखों को मेरी झोली में डाल दो, सुजाता! मैं तुम्हारे दुखों का सहभागी बनकर तुमसे भीख माँग रहा हूँ। आओ, हम दोनों मिलकर दुखों को बाँट लें। सच, मैंने तुम्हें कितना सताया है···कितना छला है···?···

आगे बढ़कर सुजाता का हाथ पकड़ता है। सुजाता सूनी-सूनी निगाहों से निर्मल की ओर देखती है।

निर्मल : इतनी सूनी निगाहों से मुझे मत देखो, सुजाता! लगता है तुम हँसना भूल गयी हो···तुम्हारी यह गम्भीरता···तुम्हारे दिल की गहराई में उतर गयी है। चलो···हम दोनों फिर से नये सिरे से हँसना सीखेंगे। दुख-दर्द के लम्बे सिलसिलों को नयी परिभाषा देंगे—सुख की परिभाषा! हमारे दामन के दुख झर जायेंगे—सूखे पत्तों-से। जिन्दगी का नया सफ़र आज से हम शुरू करेंगे।

सुजाता : जिन्दगी के फ़ैसले इतनी जल्दी नहीं हुआ करते, निर्मल बाबू! मुझे सोचने के लिए समय चाहिये।

निर्मल : हाँ, हाँ, यह तुमने ठीक कहा! सोचने के लिए समय तुम जितना चाहो ले लो, पर मेरी यूँ उपेक्षा करके मुझे दुत्कारो मत, सुजाता! मैं दुनिया में सब कुछ झेल सकता हूँ, पर तुम्हारी उपेक्षा का विष···मेरे लिए मौत बन जायगा, सुजाता,···मौत बन जायगा!

सावित्री का प्रवेश।

सावित्री : निर्मल! चलो बेटे! थके हुए हो रात भर के। यह सब तो तुमसे पूछा ही नहीं कि कैसे आये?

निर्मल : हवाई जहाज से बॉम्बे से दिल्ली तक और दिल्ली से यहाँ

तक के लिए टैक्सी ले ली थी। थकान कहाँ हुई, माँ ? और फिर थकान तो यहाँ आकर पूरी मिट गयी आप सब लोगों के दर्शनों से।

सावित्री : अच्छा चलो, सब चीजें ठण्डी हुई जा रही है।

निर्मल : सारी दुनिया के स्वाद फीके हो गये, माँ ! अब तो स्वादों की पहचान भी कहाँ रही है मुझे ?

सावित्री : (लम्बी साँस लेती है) चलो भी दोनों।

सुजाता : रुको माँ ! जल्दी न करो।

हताश भाव से सावित्री का प्रस्थान।

सुजाता : (कठोरता से) मैं तो तुम्हारे खिलवाड़ का एक खिलौना मात्र रही। जब चाहा खेल लिया और जब चाहा आलमारी में बन्द करके रख दिया। नहीं निर्मल ! मेरा मन इन स्थितियों से समझौता करने को तैयार नहीं है। सुनो ! सुजाता तुम्हारे हाथों की कठपुतली बनकर नहीं रह सकती। मैंने मर-मर कर भी जीना सीख लिया है, निर्मल ! और अब तो यूँ जीना भी सुख देता है। मेरा मन अभ्यासी हो गया है, निर्मल ! सब कुछ सह सकता है।

निर्मल : (ईज़ल पर लगी अधूरी तस्वीर के पास जाकर) तुम्हारी यह अधूरी तस्वीर मैं पूरी करूँगा, सुजाता ! मैं ही इसका नामकरण करूँगा। तुम्हारे चित्रों के नाम हैं (क्रम से एक-एक के पास जाता है)····'निर्वासिता'····'हम अकेले नहीं हैं—अँधेरा साथ है'····'बेबस साँझ अकेली'। मैं तुम्हारे चित्रों को नये नाम दूँगा। (अधूरी तस्वीर के पास आकर) इस अधूरी तस्वीर का नाम होगा 'ओ रे ओ सहयात्री !'······ (सुजाता के पास आकर) हम सहयात्री हैं, सुजाता ! हम कभी अपनी राह से भटकेंगे नहीं।

सुजाता : (शिथिल-सी सोफ़े पर बैठ जाती है) थोड़ा सोचने की मोहलत दो, निर्मल ! मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ मुझे क्या करना है। मेरी बुद्धि मेरा साथ नहीं दे रही है, निर्मल ! इतना अपाहिज मुझे मत बनाओ ! मेरा विवेक मत छीनो ! (आँचल से मुँह ढाप लेती है)।

निर्मल : हमारी बुद्धि अलग-अलग नहीं है। हमारा अस्तित्व एक-दूसरे से भिन्न नहीं है, हमारा विवेक भी एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है, सुजाता ! आओ हम प्रतिज्ञा करते हैं···हम अपनी राह से भटकेंगे नहीं···एक-दूसरे का साथ नहीं

छोड़ेंगे। साथ मरेंगे···साथ जियेंगे···एक-दूसरे का दुख झेलेंगे···साथ-साथ। हम एक मंजिल के राही······हैं··· हमराही······!

आगे बढ़कर सुजाता का हाथ पकड़ता है। सुजाता उठती है। मन्द गति से दोनों का अन्दर की ओर प्रस्थान। धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।





१

…और एक नया सूरज

पात्र

डा० विक्रमसिंह	विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर
डा० गुलाटी	विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार
सोहनलाल	डा० विक्रमसिंह का पी०ए०
महेन्द्र	विश्वविद्यालय छात्र-संघ का सेक्रेटरी (अवस्था २० वर्ष)
रहमान	विश्वविद्यालय छात्र-संघ का प्रेसीडेण्ट (अवस्था २१ वर्ष)
गरिमा	महिला छात्र-प्रतिनिधि (अवस्था १६ वर्ष)
डा० भटनागर	विश्वविद्यालय शिक्षक-संघ के महामन्त्री
डा० रत्नाकर	विश्वविद्यालय शिक्षक-संघ के प्रेसीडेण्ट
सन्तू	चपरासी
डा० गुप्ता, डा० बंजल	अग्रवाल महिला विद्यालय के सेक्रेटरी एवं प्रेसीडेण्ट

[स्थान—विश्वविद्यालय कैम्पस।

पर्दा खुलता है। विश्वविद्यालय कार्यालय में डा० विक्रमसिंह का कक्ष दिखायी देता है। सामने दीवार है, जिसमें बायीं ओर एक खिड़की है, जो बाहर कैम्पस की ओर खुलती है। दाहिनी ओर लकड़ी का एक रैक है, जिसमें कुछ मोटी-मोटी किताबें सजी हैं। बीच में एक सोफ़ा सेट है। सोफ़ा सेट के आगे एक बड़ी टेबल है जिस पर फूलदान में नये ताजे फूलों का गुच्छा सुन्दर ढंग से सजाया गया है। बायीं ओर बाहर जाने का द्वार है। दाहिनी ओर किताबों के रैक के पास एक दरवाजा है, जो एक छोटे-से कक्ष में खुलता है, जिसमें एक कुर्सी पर बैठे सोहनलाल की अंगुलियाँ टाइप-राइटर पर बड़ी द्रुत गति से चल रही है। सन्तू चपरासी एक-एककरके कुर्सियाँ ला रहा है और सोफ़ा सेट के दायी ओर रख रहा है।

समय—प्रातःकाल १० लगभग बजे।]

सन्तू : क्यों लाल जी बाबू! (सोहनलाल से) छः कुर्सियाँ बहुत होंगी न?

सोहनलाल : (टाइप करते-करते) हाँ, हाँ, और क्या कुर्सियों की बारात लगानी है?

डा० विक्रमसिंह का प्रवेश। सन्तू सर झुकाकर सलाम करता है और चला जाता है। सोहनलाल भी छोटे कक्ष से बाहर निकलकर झुककर नमस्ते करता है।

डॉ० विक्रमसिंह : नमस्कार···नमस्कार (सोफ़े पर बैठ जाते हैं)।

कुछ चिन्तित-से मेज पर रखा अखबार उठाते हैं। सुर्खियों पर सरसरी नजर डालकर अखबार रख

देते हैं। फिर कुछ देर सोचते हैं।

डॉ० विक्रमसिंह : (सोहनलाल से) क्या सारे पेपर्स टाइप हो गये ?

सोहनलाल : जी !

डॉ० विक्रमसिंह : फ़ाइल कर लो सबको, और हाँ, यह कल का अख़बार नहीं हटाया। इसकी यह कटिंग काटकर भी फ़ाइल में लगा दो।

सोहनलाल : (डा० विक्रमसिंह से अख़बार लेता है, कटिंग के लिए उस स्थान पर निशान लगाता है) अच्छा सर ! (प्रस्थान)।

डा० विक्रमसिंह पुनः चिन्तित मुद्रा में कुछ सोचते हैं। घड़ी की ओर देखते हैं। तभी सन्तू का ट्रे में एक पानी का गिलास लिये प्रवेश। सन्तू खड़ा रहता है। डा० विक्रमसिंह पानी पीकर ट्रे में रख देते हैं। माथे से पसीना पोंछते हैं, फिर घड़ी देखते हैं। सन्तू गिलास लेकर बाहर चला जाता है। तभी फ़ोन की घण्टी बजती है। सन्तू फ़ोन उठाकर डा० विक्रमसिंह के पास लाता है।

डॉ० विक्रमसिंह : हलो, मैं विक्रमसिंह···बी० सी० विश्वविद्यालय।···ओह तुम हो तोषी !···हाँ···हाँ···मेजर गुप्ता के लड़के की शादी है आज ? ठीक है···पर मैं तो आज बहुत बिज़ी हूँ। देखो सन्तोष ! आज तुम्हीं ऋतु को लेकर चली जाओ। आज का दिन तो सचमुच···हूँ···हूँ···हाँ, हाँ, ठीक है, ठीक है, तुम बहुत समझदार हो (फ़ोन रख देते हैं)।

डा० गुलाटी का प्रवेश।

डॉ० विक्रमसिंह : आइये गुलाटी साहब ! मैं आप की ही प्रतीक्षा कर रहा था। १० बज रहे हैं। १० बजे का ही समय तो उन्हें दिया है।

डॉ० गुलाटी : आते ही होंगे वे लोग। आज १० से १ तक टीचर्स और छात्रों के प्रतिनिधियों को मिलना है।

तभी दूर से कुछ शोर सुनायी देता है। शोर नारों का सा लगता है, शायद कोई जुलूस है, जो धीरे-धीरे यूनिवर्सिटी कैम्पस में प्रवेश कर रहा है। डा० विक्रमसिंह खड़े होकर खिड़की के पास जाते हैं और पर्दा हटाकर बाहर झाँकते हैं। डा० गुलाटी भी पीछे-पीछे जाते हैं।

डॉ० गुलाटी : काफ़ी बड़ी संख्या में ये लोग आ रहे हैं।

डॉ० विक्रमसिंह : पर हमने तो सेक्रेटरी और प्रधान को ही मिलने के लिए बुलाया था।

नारे ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं और अब साफ़ सुनायी
. दे रहे हैं। शायद सब लोग विश्वविद्यालय कैम्पस
में कार्यालय के पास तक आ गये हैं।

डॉ० विक्रमसिंह : कुर्सी छोड़ो
डॉ० गुलाटी : मुर्दाबाद
हमारी माँगें : पूरी करो
डॉ० विक्रमसिंह : मुर्दाबाद

सन्तू उत्तेजित-सा प्रवेश करके।

सन्तू : वे लोग आ गये, साब !

डॉ० विक्रमसिंह : उनके रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज़ को ही आने देना।

डॉ० गुलाटी : आज की युवा पीढ़ी कितनी गुमराह हो गयी है—लक्ष्य-हीन ······पथभ्रष्ट अराजकता की शिकार। रास्ते से भटके हुए ये लोग······अपने भविष्य को ये खुद बिगाड़ रहे हैं···

डॉ० विक्रमसिंह : इन्हें ही तो रास्ते पर लाना है।

महेन्द्र, रहमान और गरिमा का द्रुत गति से प्रवेश।

डॉ० विक्रमसिंह : आइये, आइये, हम आपकी ही प्रतीक्षा में थे।

सब बैठ जाते हैं। सन्तू छः-सात गिलासों में पानी लेकर आता है, सोहनलाल छोटे कक्ष से फ़ाइल लेकर, बाहर आकर एक ओर साइड में कुर्सी पर बैठ जाता है, मिनिट्स नोट करने के लिए।

महेन्द्र : हम तब तक जल ग्रहण नहीं करेंगे, जब तक हमारी माँगें पूरी न होंगी।

रहमान : हमने प्रतिज्ञा की है कि······

गरिमा : हम अपने रास्ते से डिगेंगे नहीं। चाहे कुर्बानियाँ देनी पड़ें। हमें क्रान्ति की इस नन्हीं-सी चिंगारी को बुझने नहीं देना है।

सन्तू का प्रस्थान।
बाहर से फिर नारे सुनायी देते हैं—

छात्र एकता : ज़िन्दाबाद
डॉ० विक्रमसिंह : मुर्दाबाद
डॉ० गुलाटी : मुर्दाबाद
माँग हमारी : कुर्सी छोड़ो

नारे के स्वर धीमे हो जाते हैं।

डॉ० विक्रमसिंह : नारे तो आप सचमुच बड़े माकूल दे रहे हैं। आपकी यदि यही इच्छा है तो कुर्सी से हमें कोई मोह नहीं, लेकिन क्या

कुर्सी छोड़कर हम अपनी समस्याओं को सुलझा सकेंगे ? हाँ ! जरा अपना माँग-प्रपत्र तो दीजिये ।

महेन्द्र माँग-प्रपत्र आगे बढ़ाता है ।

डॉ० विक्रमसिंह : (माँग-प्रपत्र ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं) आपकी ये सभी माँगें सचमुच में जैनुइन हैं । 'शिक्षा का पैटर्न बदले', 'परीक्षा-पद्धति बिल्कुल सड़-गल गयी है, इसको नया रूप दिया जाये', '५० प्रतिशत सीट्स का रिजर्वेशन अन्यायपूर्ण है'—आपकी सभी माँगें वजनदार हैं । आप लोग सचमुच अब इतने जागरूक हैं कि जबरदस्ती थोपा हुआ कुछ भी बर्दाश्त नहीं कर सकते । आप क्रान्तिद्रष्टा हैं । देश के विकास का यह शुभ लक्षण है । मैं आपका स्वागत करता हूँ ।

महेन्द्र : शिक्षा जीविकाप्रधान भी होनी चाहिये ।

रहमान : क्या लाभ है, ऐसी शिक्षा से जो ९० प्रतिशत लोगों के काम की नहीं, जो केवल दस प्रतिशत लोगों को रोजी देती है ? नब्बे प्रतिशत छात्र सड़कों पर अपनी चप्पल घिसते-घिसते थक जाते हैं, पर रोजी और रोटी की समस्या हल नहीं होती ।

डॉ० गुलाटी : पर शिक्षा का पैटर्न एक दिन में तो नहीं बदला जा सकता । आपकी माँगें अपनी जगह दुरुस्त है, पर आप हमारी परेशानियों को भी तो देखिये । ऊपर-ऊपर से ही तो यह पद्धति नहीं बदली जा सकती । इसके लिए तो सारे स्ट्रक्चर को ही बदलना होगा ।

गरिमा : हम भी तो शिक्षा में आमूल परिवर्तन चाहते हैं ।

डॉ० विक्रमसिंह : मैं इसके लिए जी-जान से कोशिश कर रहा हूँ । सभी विश्वविद्यालयों के वाइस चान्सलरों, सभी प्रदेशों के शिक्षा-मन्त्रियों एवम् शिक्षा-विशेषज्ञों की एक मीटिंग जून में शिमला में होने जा रही है । आपकी समस्या समूचे देश की समस्या है ।

डॉ० गुलाटी : इसलिए समाधान भी पूरे देश के छात्रवर्ग के हित को ध्यान में रखकर ही निकालने हैं ।

बाहर से फिर नारों का शोर उभरता है—

डॉ० विक्रमसिंह : मुर्दाबाद
डॉ० गुलाटी : मुर्दाबाद
शिक्षा पद्धति : बदलकर रहेगी
हमारी माँगें : रोजी दो, रोटी दो

गरिमा : आप एयर-कूलर का सुख ले रहे है, डॉक्टर साहब ! आप क्या जानें मई की दोपहरी की तपिश का दुख।

रहमान : वह दुख हम जानते हैं, जो वर्षों तक सड़कों की खाक छानने पर भी बेकार रहते हैं।

नारे उभरते हैं—

इन्कलाब : जिन्दाबाद

छात्र-शान्ति : नही दबेगी

महेन्द्र : (उठकर खिड़की के पास जाकर गरजता है) मेरे साथी भाइयों ! आप लोग धूप में खड़े है—तप रहे हैं। लू के थपेड़े झेल रहे हैं। यहां एयरकूलर की ठण्डी हवा में मै खड़ा हूं, पर मुझे यह हवा भी तपा रही है क्योंकि मेरे दोस्त जलती धूप में खड़े है। हम आपके प्रतिनिधि हैं, आपने हमें अपना विश्वास दिया है। आप लौट जायें। हम आज कोई समझौता करके ही लौटेंगे। आज जो क्रान्ति का नया सूरज उगा है, उसे हम डूबने नही देंगे।

भीड़ नारे लगाती हुई कैम्पस से बाहर की ओर बढ़ती है—

छात्र-शिक्षक एकता : जिन्दाबाद

महेन्द्रसिंह : जिन्दाबाद

रहमान : जिन्दाबाद

विक्रमसिंह : मुर्दाबाद

धीरे-धीरे नारे दूर होते चले जाते हैं।

डॉ० विक्रमसिंह : सबसे पहले तो आप यह तय करें कि परीक्षाएँ कब होंगी ? आप क्या चाहते हैं—मई में, जून में या जुलाई में ?

गरिमा : परीक्षाएँ छात्र-हित को ध्यान मे रखकर मई में ही होनी चाहियें, २० मई के आसपास।

महेन्द्र : पर इसका यह मतलब नहीं है कि परीक्षाओं के बाद यह चिंगारी ठण्डी हो जायेगी......।

रहमान : हमारा क़दम जो एक बार आगे बढ़ा है, पीछे नहीं हटेगा।

महेन्द्र : आपकी नीति छात्रों के लिए ठीक नहीं है, सर ! यह देखिये अखबार में क्या छपा है—हमारा आपसे कोई समझौता नहीं हुआ। आप पुलिस के ज़ोर से चाहते, तो परीक्षाएँ करा सकते थे, परन्तु आपने यह नही चाहा।

डॉ० विक्रमसिंह : देखिये, समाचार-पत्र क्या छापता है क्या नहीं मुझे इसकी सफ़ाई नहीं देनी है। कभी-कभी समाचार-पत्रों में

बड़े गलत-गलत स्टेटमैण्ट्स छप जाते है। उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। आप लोगों को समाचार-पत्रों पर विश्वास नहीं करना चाहिये। विवेक से काम लेना चाहिये।

रहमान : माफ़ कीजिये विवेक से काम आप नहीं ले रहे हैं, सर ! किसके आदेश से आप बार-बार परीक्षाएँ पोस्टपोन करते रहे अब तक ? हम प्लास्टर ऑफ़ पेरिस से बने स्टेचूज नहीं हैं कि आप हम पर जो चाहें लाद दें—थोप दें।

गरिमा : हम भी हाड़-मांस के इन्सान हैं। हमारी भी अपनी ज़रूरतें हैं, अपनी अलग स्वतन्त्र चिन्तन-धाराएँ हैं। परीक्षाओं की डेट हमें दीजिये। अगले वर्ष हम इस दूषित परीक्षा-पद्धति का शिकार नहीं बनने जा रहे हैं।

महेन्द्र : हमारा यह आन्दोलन सार्वदेशिक है। हम झुकेंगे नहीं। परीक्षा की तारीख २० मई निश्चित कीजिये।

डॉ० विक्रमसिंह : २० मई सम्भव नहीं। आज दस है। १५ दिन का समय कम-से-कम नोटिफ़िकेशन के लिए चाहिये।

डॉ० गुलाटी : आप ठीक कहते है २५ ठीक रहेगी।

रहमान : खैर, २५ मई ही सही।

सन्तू कोका कोला की छः बोतलें एक ट्रे में रखकर प्रवेश करता है। तभी डॉ० भटनागर और डॉ० रत्नाकर का प्रवेश।

डॉ० विक्रमसिंह : आइये, आइये, रत्नाकर साहब ! हम आपकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। सन्तू, दो बोतलें कोका कोला की और लाओ। अरे, रहमान, महेन्द्र, तुम लोग रोष छोड़ो। खाने-पीने से कैसी नाराजगी ?

संकोच के साथ महेन्द्र, रहमान और गरिमा कोका कोला की बोतलें उठाते हैं। सन्तू दो बोतलें और लाता है। सब कोका कोला लेते हैं। महेन्द्र, गरिमा और रहमान खड़े होते हैं।

रहमान : अच्छा सर ! परीक्षा की तारीख २५ मई रही। आपने यदि हमारी माँगों पर ध्यान नहीं दिया, इन्हें पूरा नहीं किया, तो फिर हम·········

डॉ० विक्रमसिंह : अरे नहीं, नहीं। मुझ पर विश्वास रखो।

तीनों का प्रस्थान।

डॉ० विक्रमसिंह बैठते हैं।

डॉ० रत्नाकर : तो परीक्षा की २५ तारीख निश्चित कर दी है, किन्तु

क्षमा करें धृष्टता के लिए, डॉक्टर साहब ! आप छात्र-हित की बात करते हैं और शिक्षक का हित भूल जाते है ।

डॉ० भटनागर : दरअसल बात यह है कि आप छात्र से शिक्षक को अलग करके देखते हैं । शिक्षक और छात्र एक ही हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू । विश्वविद्यालय की नीति का निर्धारण दोनों के हितों को ध्यान में रखकर होना चाहिये ।

डॉ० विक्रमसिंह : आखिर आप लोग चाहते क्या हैं ? मुझे तो सभी के हितों का ध्यान रहता है । आप सब लोग मेरे सहयोगी हैं । आपका कोऑपरेशन मुझे न मिले, तो क्या मैं कुछ कर सकता हूँ ?

डॉ० रत्नाकर : देखिये, इस बार तो हमारा फुल कोऑपरेशन है । अगली बार अगर हमारी वेकेशन्स खराब हुई, तो हम लोग भी परीक्षा का बहिष्कार करने मैदान में आ जायेंगे ।

डॉ० विक्रमसिंह : माफ़ करें, डॉ० रत्नाकर ! आप लोग वेकेशन्स को अपना अधिकार मानकर चलते हैं । वेकेशन्स आपका अधिकार नहीं है ।

डॉ० भटनागर : वेकेशन्स हमारा अधिकार नहीं है ?

डॉ० रत्नाकर : तो फिर क्या है ?

डॉ० विक्रमसिंह : यह तो आपको दी गयी प्रिविलेज है । खैर छोड़िये इस बार तो कुछ विशेष परिस्थितियाँ थीं । छात्र-हड़ताल, टीचर्स स्ट्राइक, साम्प्रदायिक दंगे, इलेक्शन्स । कॉलिजेज बहुत दिनों तक बन्द रहे, इसलिए कोर्स पूरे नहीं हुए । विद्यार्थियों ने ही परीक्षाओं के पोस्टपोनमैण्ट की बात उठायी थी, इसीलिए यह क़दम उठाना पड़ा ।

डॉ० रत्नाकर : परीक्षा में इन्विजिलेशन का कार्य ऐच्छिक होना चाहिये ।

डॉ० विक्रमसिंह : यह कैसे हो सकता है, डॉक्टर साहब ? परीक्षा का कार्य भी तो ड्यूटी का एक पार्ट ही है । अगर इसे ऐच्छिक कर दिया जायेगा, तो कौन परीक्षा में इन्विजिलेशन का कार्य करेगा ? फिर भी······

डॉ० भटनागर : हमारे संघ द्वारा पारित प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि आपके लिए है । **(डॉ० विक्रमसिंह को देते हैं)**

डॉ० विक्रमसिंह : **(प्रतिलिपि लेकर सरसरी निगाह डालते हैं)** ठीक है आपके प्रस्ताव पर भी हम विचार करेंगे ।

अभिवादन करके दोनों का प्रस्थान । डॉ० विक्रमसिंह सन्तोष की साँस लेते हैं ।

डॉ० गुलाटी : पता नहीं क्या होनेवाला है भविष्य में ? सब कुछ

अव्यवस्थित हो रहा है। आन्दोलन, स्ट्राइक, प्रदर्शन, नारे—यही सब कुछ तो रह गया है।

डॉ० विक्रमसिंह : दरअसल बात यह है कि ड्यूटी के प्रति आस्था लोगों में नहीं रही। लोगों की दृष्टि में पैसा बड़ा हो गया है। सारे असन्तोष का एक मुख्य कारण लगता है आज की बेरोज़गारी और बेकारी। यह समस्या इतनी भयंकर है कि बहुत जल्दी ही कुछ सोल्यूशन्स निकालने होंगे।

डॉ० गुलाटी : तो २५ मई का नोटिफ़िकेशन पेपर्स में करा रहा हूँ।

डॉ० विक्रमसिंह : हाँ, हाँ, यह तो आज ही करना है।

डॉ० गुलाटी का प्रस्थान। तभी कॉल बेल बजती है, सन्तू के साथ दो व्यक्तियों का प्रवेश।

डॉ० विक्रमसिंह : आइये, आइये।

पहला व्यक्ति : मैं अग्रवाल महिला विद्यालय का सेक्रेटरी गुप्ता हूँ, डॉ० साहब ! और ये हैं प्रेसीडेण्ट डॉ० बैजल।

डॉ० विक्रमसिंह : ओह, ठीक है। आपकी फ़ाइल आ गयी है। पैनल रिपोर्ट्स भी आ चुकी हैं। आपका मामला विचाराधीन है।

डॉ० बैजल : हमने सारी कण्डीशन्स भी पूरी कर दी हैं। इस सत्र से डिग्री कक्षाओं को खोलने की अनुमति हमें दे ही दीजिये।

डॉ० विक्रमसिंह : आप चिन्ता न करें। अगर कण्डीशन्स पूरी कर दी है, तो अनुमति मिल ही जायेगी।

डॉ० गुप्ता : धन्यवाद, डॉक्टर साहब ! (उठते हैं दोनों)

दोनों : (साथ-साथ) अच्छा नमस्कार !

डॉ० विक्रमसिंह : (खड़े होकर) नमस्कार ! नमस्कार !

दोनों का प्रस्थान। डॉ० विक्रमसिंह उठते हैं, इधर-उधर चिन्तित मुद्रा में घूमते हैं। फिर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। फ़ोन की घण्टी बजती है। सन्तू फ़ोन उठाकर डॉ० विक्रमसिंह को लाकर देता है।

डॉ० विक्रमसिंह : (फ़ोन लेकर) हलो ! विक्रमसिंह स्पीकिंग। हाँ, हाँ, नमस्कार ! ऐं क्या कहा ? आपकी यूनियन भी हड़ताल करने जा रही है............आज तो मेरे साथ बहुत सारे एपॉइण्टमैण्ट्स हैं। कल की तारीख दे दूँ ? प्रातःकाल ६ बजे मेरे निवास-स्थान पर आ जाइये। नहीं ! नहीं, कोई बात नहीं। क्या कहा ? असुविधा कैसी ? ये तो मेरी ड्यूटी है। अच्छा नमस्कार !

फ़ोन रखते हैं। तभी फ़ोन की घण्टी फिर बजती है। डॉ॰ विक्रमसिंह फ़ोन उठाते हैं।

डॉ॰ विक्रमसिंह : हाँ विक्रमसिंह बोल रहा हूँ। अरे सन्तोष·········मैं तुम्हें फ़ोन करने की सोच ही रहा था। देखो सन्तोष ! १ बज रहा है। अभी कुछ लोग मिलने आनेवाले हैं। हाँ, लंच पर आज मेरी प्रतीक्षा न करना। हाँ······हाँ·········हाँ ठीक है। सच, अच्छा तो नहीं लग रहा, तोषी ! पर क्या करूँ ? मजबूरी है।······हाँ······हाँ, क्या कह रही हो, इस्तीफ़ा दे दूँ ? अरे इतने से ही घबरा गई। नहीं तोषी ! ······इस्तीफ़ा समस्या का हल नहीं है। अँधेरे की घाटियों में से जो एक नया सूरज उग रहा है, उसे कैसे डूब जाने दूँ ? हाँ···हूँ···हूँ···कितने बजे लौटूँगा ? ५॥ बजे शाम को ऑल इण्डिया साइन्स एसोसिएशन की मीटिंग अटेण्ड करनी है। ······नहीं······नहीं···लंच यहीं ले लूँगा, चिन्ता मत करो। अच्छा······हाँ···हाँ···रात ही हो जायेगी लौटते-लौटते······(फ़ोन रख देते हैं)।

डॉ॰ विक्रमसिंह अँगड़ाई लेते हैं।

डॉ॰ विक्रमसिंह : (सोहनलाल से) सोहनलाल ! जरा डायरी देखकर बताओ ४॥ बजे तक का क्या-क्या प्रोग्राम है ?

सोहनलाल : (डायरी खोलकर) जी, तीन बजे प्रोफ़ेसर बख्शी आ रहे है।

डॉ॰ विक्रमसिंह : हाँ आस्ट्रेलिया से कल ही तो लौटकर आये हैं। ठीक है एजुकेशन पैटर्न पर वे कुछ सुझाव दे सकेंगे।

सोहनलाल : ४ बजे महिला महाविद्यालय से डॉ॰ श्रीमती अंजनी मेहता आयेंगी, अपने विद्यालय की कुछ टीचर्स का डेपुटेशन लेकर। उसके बाद ४॥ बजे सभी प्रिंसिपल्स को आपने मीटिंग के लिए बुलाया है।

डॉ॰ विक्रमसिंह : ठीक है, सोहनलाल ! आज के दिन तो दम मारने की भी फ़ुरसत नहीं मिलेगी। फिर भी मैं खुश हूँ क्योंकि अँधेरे की घाटियाँ, जो अब तक सो रही थीं—जाग रही हैं। हमारे जीवन में एक नया दिन आ रहा है नया सूरज लिये······क्रान्ति का सूरज—इन्क़लाब का सूरज। यह सूरज कभी नहीं डूबेगा·········कभी नहीं डूबेगा।

सोहनलाल : **(मुँह फाड़े डॉ॰ विक्रमसिंह को देखता है)।**

डॉ॰ विक्रमसिंह : क्या पागल से देख रहे हो, सोहनलाल ? मैं आज बहुत खुश हूँ। मुझे जितनी गालियाँ मिलती हैं, उतनी ही एक

नयी चेतना मुझमें जाग जाती है। चलो आज का मसला तो हल हुआ। आज ही से आनेवाले कल के लिए समाधान टटोलेंगे तो क्यों नही समस्याएँ हल होंगी। जरूर होंगी। हमें इस उगते हुए सूरज को डूबने नहीं देना है··· नहीं डूबने देना है। जलते हुए सूरज का लाल-लाल गोलक! अन्धेरे में जगती हुई रोशनी! मैं जिस भविष्य के सपने देख रहा था, वह दूर नही है, सोहनलाल! अन्धेरे की वादियों से निकल कर लोग उजालों की मशाल लिये धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। आने वाला कल हमें अब गुमराह नहीं करेगा······वह हम सबका होगा······हम···सबका।

सोहनलाल विस्फारित नेत्रों से विक्रमसिंह को देखता है। पर्दा गिरता है।